

सूत्र विभाग

उत्तराध्ययन सूत्र

असंस्कृत नामक चौथा अध्ययन

असंख्यं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताणं।

एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, किण्णू विहिंसा अजया गहिंति ॥१॥

जीविय=यह जीवन, असंख्यं=संस्कार रहित है अर्थात् एक बार टूटने पर पुनः नहीं जोड़ा जा सकता अतएव, मा पमायए=प्रमाद मत करो, जरोवणीयस्स=वृद्धावस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति की, ताणं=रक्षा करने वाला, हु=निश्चय ही, णत्थि=कोई नहीं है, एवं=इस प्रकार, वियाणाहि=समझो कि, विहिंसा=हिंसा करने वाले और, अजया=पापस्थान से निवृत्त न होने वाले, पमत्ते=प्रमादी, जणे=पुरुष अन्त समय में, किण्णू=किस की, गहिंति=शरण में जावेंगे॥१॥

जे पावकम्मेहिं धणं मणुस्सा, समाययंति अमइं गहाय।

पहाय ते पासपयट्टिए णरे, वेराणुबद्धा णरयं उवेति॥२॥

कुबुद्धि एवं अज्ञान के वश होकर, जे=जो, मणुस्सा=मनुष्य, पावकम्मेहिं=पाप कर्मों से, धणं=धन को, अमइं=अमयं=अमृत के समान समझ कर, गहाय=ग्रहण करके, समाययंति=संचय करते हैं, पासपयट्टिए=स्त्री-पुत्र आदि के पाश में फँसे हुए और, वेराणुबद्धा=वैर-भाव की श्रृंखला में जकड़े हुए, ते=वे, णरे=मनुष्य अन्त समय में धन को यहीं, पहाय=छोड़कर, णरयं=नरक को, उवेति=प्राप्त करते हैं। उस समय वह धन उनको शरणरूप नहीं होता॥२॥

तेणे जहा संधिमुहे गहिए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।

एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि॥३॥

जहा=जिस प्रकार, संधिमुहे=संधिमुख पर सेंध लगाते हुए, गहिए=पकड़ा हुआ, पावकारी=पापात्मा, तेणे=चोर, सकम्मुणा=अपने ही किये हुए कर्मों से, किच्चइ=दुःख पाता है, एवं=उसी प्रकार, पया=जीव, इहलोए=इस लोक, च=और, पेच्च=परलोक में अपने किये हुए अशुभ कर्मों से दुःख पाते हैं, क्योंकि फल भोगे बिना, कडाण=किये हुए, कम्माण=कर्मों से,

मोक्ख=छुटकारा, ण अत्थि=नहीं होता॥३॥

संसारमावण्ण परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं।

कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, ण बंधवा बंधवयं उवेत्ति॥४॥

संसारं=संसार में, आवण्ण=प्राप्त हुआ जीव, परस्स=दूसरे के, अट्ठा=लिये, च=और अपने लिए, जं=जो, साहारणं=साधारण, कम्मं=कर्म, करेइ=करता है, तस्स=उस, कम्मस्स=कर्म के, वेयकाले=फलभोग के समय, उ=निश्चय ही, ते=वे, बंधवा=बंधु आदि, बंधवयं=बंधुता का, ण उवेत्ति=पालन नहीं करते हैं, अर्थात् फल भोगने के समय दुःख में हिस्सा नहीं बँटाते। यह जीव अपने किये हुए कर्मों को अकेला ही भोगता है॥४॥

वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था।

दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे, णेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव॥५॥

पमत्ते=प्रमादी पुरुष, इमम्मि=इस, लोए=लोक में, अदुवा=अथवा, परत्था=परलोक में, वित्तेण=धन से ताणं=शरण, ण लभे=नहीं पाता है, दीवप्पणट्ठे व=जिसका दीपक बुझ गया है, ऐसे व्यक्ति के समान, अणंतमोहे=अनंत मोहवाला प्राणी, णेयाउयं=न्याय युक्त सम्यग् दर्शनादि रूप मुक्ति मार्ग को, दट्ठुं=देखकर भी, अदट्ठुमेव=न देखने वाला ही रहता है॥५॥

भावार्थ- जैसे दीपक लेकर गुफा में गया हुआ व्यक्ति दीपक के प्रकाश में वहाँ रखी हुई सभी वस्तुएँ देखता है, किन्तु प्रमादवश दीपक बुझ जाने पर उसका वस्तुओं को देखना और न देखना एक-सा हो जाता है। इसी प्रकार कर्मों का क्षयोपशम होने पर श्रुतज्ञान रूप भव दीपक के प्रकाश में आत्मा मोक्षमार्ग का दर्शन करता है, किन्तु धन आदि में आसक्ति के कारण वह पुनः कर्मों से आवृत्त हो जाता है, फलतः उसका मुक्तिमार्ग का दर्शन करना भी, न करने के समान ही हो जाता है। इस प्रकार धन स्वयं भी जीव का रक्षण नहीं कर सकता है और रक्षा करने वाले सम्यग् दर्शन आदि गुणों का भी घातक होता है।

सुत्तेसु यावी पडिबुद्ध-जीवी, ण वीससे पंडिए आसुपण्णे।

घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंड-पक्खी व चरेऽप्पमत्तो॥६॥

सुत्तेसु=द्रव्य और भाव से सोये हुए लोगों के बीच, यावी=भी, पडिबुद्ध-जीवी=द्रव्य और भाव से जागकर संयम युक्त जीवन जीने वाला,

आसुपण्णे=आशुप्रज्ञ, पंडिण्=पंडित मुनि, प्रमादाचरण में, ण वीससे=विश्वास नहीं करे, मुहुत्ता=काल, घोरा=घोर-अनुकम्पा रहित है और, सरीरं=शरीर, अबलं=निर्बल है अतएव, भारंड-पक्खी व=भारण्ड पक्षी के समान, अप्पमत्तो=प्रमाद-रहित होकर सावधानीपूर्वक, चरे=विचरे॥6॥

भावार्थ- आशुप्रज्ञ पंडित मुनि को चाहिए कि धर्म के प्रति असावधान एवं प्रमादी लोगों के बीच रहते हुए भी स्वयं सदा धर्म में तत्पर रहे और जन-साधारण के समान प्रमाद में कतई विश्वास नहीं करे। काल निर्दय है, उसके आगे शरीर सर्वथा अशक्त है। अतएव मुमुक्षु को चाहिए कि भारण्ड पक्षी के समान सदा प्रमाद-रहित होकर, शास्त्र-विहित अनुष्ठानों का सेवन करे।

चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मण्णमाणो॥

लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा परिण्णाय मलावधंसी॥७॥

साधु को चाहिए कि मूलगुण आदि स्थानों में, पयाइं=पद-पद पर कहीं दोष न लग जाय इस प्रकार, परिसंकमाणो=शंका करता हुआ और, इह=इस लोक में, जं किंचि=गृहस्थ के साथ जो कुछ थोड़ा भी परिचय आदि है उसे, पासं=संयम के लिए पाश रूप, मण्णमाणो=मानता हुआ, चरे=विचरे, लाभंतरे=जब तक इस शरीर से विशेष ज्ञान-ध्यान-संयम-तप आदि गुणों का लाभ होता हो, तब तक, जीविय=जीवन की, बूहइत्ता=वृद्धि करे अर्थात् अन्न-पानी आदि द्वारा सार-सम्भाल करे, किन्तु पच्छा=बाद में लाभ न होने की अवस्था में, परिण्णाय=ज्ञपरिज्ञा द्वारा शरीर को धर्म साधन के अयोग्य समझ कर और प्रत्याख्यान परिज्ञा द्वारा आहार का त्याग कर, मलावधंसी=इस औदारिक शरीर का त्याग करे॥7॥

छंदं णिरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खिय वम्मधारी।

पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ॥८॥

जहा=जिस प्रकार, सिक्खिय वम्मधारी=सवार की अधीनता में रहकर शिक्षा पाया हुआ और शरीर पर कवच धारण करने वाला, आसे=घोड़ा, युद्ध में शत्रुओं से नहीं मारा जाता अपितु शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार गुरु की अधीनता में रहकर शास्त्र-विहित आचार का सेवन करने वाला मुनि। छंदं णिरोहेण=स्वच्छन्दता का त्याग करने से, मोक्खं=मोक्ष, उवेइ=प्राप्त करता है, अतएव गुरु की आज्ञा में रहता हुआ साधु, पुव्वाइं=पूर्व,

वासाङ्=वर्षों तक, अप्पमत्तो=प्रमाद रहित होकर, चरे=विचरण करे, तम्हा=इस प्रकार करने से, मुणी=साधु, खिप्पं=शीघ्र ही, मोक्खं=मोक्ष को, उवेइ=प्राप्त करता है ॥8॥

स पुव्वमेवं ण लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाणं।

विसीयइ सिद्धिले आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स भेए॥९॥

जो व्यक्ति पहले से ही अप्रमत्त होकर ऊपर कहे अनुसार धर्माचरण नहीं करता और पिछली अवस्था के लिए छोड़ देता है, स=वह, पुव्वमेवं=पहले के समान, पच्छा=बाद में भी, ण लभेज्ज=धर्माचरण न कर सकेगा। सासयवाइयाणं=शाश्वतवादी (निश्चयवादी) निरुपक्रम आयु वालों का 'बाद में धर्म का आचरण कर लेंगे,' एसोवमा=यह विचारना ठीक भी हो सकता है, किन्तु जल के बुलबुले के समान आयु वालों का यह विचारना ठीक नहीं है, ऐसा व्यक्ति, आउयम्मि=आयु के, सिद्धिले=शिथिल होने पर तथा, कालोवणीए=मृत्यु काल निकट आने पर एवं, सरीरस्स=शरीर के, भेए=नाश होने के अवसर पर, विसीयइ=खेद करता है॥9॥

भावार्थ- आयु के परिमाण को जानने वाले निरुपक्रम आयु वाले लोग यदि कहें कि 'हम पीछे धर्माचरण कर लेंगे' तो उनका कहना ठीक भी हो सकता है, किन्तु जिनकी आयु का कोई निश्चय नहीं है, न जाने कब टूट जाए, वे यदि बाद में धर्माचरण की बात कहें, तो वे पहले भी नहीं करेंगे और पीछे भी न कर पायेंगे। अन्त में आयु समाप्त होने के समय मौत के निकट आने पर हाथ मलने के सिवाय उनका कोई चारा न होगा।

खिप्पं ण सक्केइ विवेकमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे।

समिच्च लोयं समयया महेसी, अप्पाण-रक्खी चरमप्पमत्तो ॥१०॥

खिप्पं=शीघ्र ही, विवेकमेउं=विवेक प्राप्त करना और बाह्य संग एवं कषायों का त्याग करना, ण सक्केइ=शक्य नहीं है, तम्हा=इसलिए, अप्पाण-रक्खी=आत्मा की रक्षा करने वाला, महेसी=मोक्षार्थी मुनि, कामे=काम-भोगों का, पहाय=त्याग कर और, लोयं=लोक का स्वरूप, समयया=समभाव पूर्वक, समिच्च=जान कर, अप्पमत्तो=प्रमाद रहित होकर, समुट्ठाय=सावधानी पूर्वक, चरे=विचरे॥10॥

मुहुं मुहुं मोहगुणे जयंतं, अणेग-रूवा समणं चरंतं।

फासा फुसंती असमंजसं च, ण तेसु भिक्खू मणसा पउस्से॥११॥

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-9 ••••• 4

मोहगुणे=शब्दादि मोह गुणों को, मुहुं मुहुं=बारंबार निरन्तर, जयंतं=जीतते हुए और, चरंतं=संयम मार्ग में विचरते हुए, समणं=साधु को, अणेगरूवा=अनेक प्रकार के, फासा=स्पर्श शब्दादि विषय, असमंजसं=प्रतिकूल रूप से, फुसंती=स्पर्श करते हैं किन्तु, भिक्खू=साधु को चाहिए कि, तेसु=उन पर, मणसा=मन से भी, ण पउस्से=द्वेष न करे॥११॥

मंदा य फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मणं ण कुज्जा।

रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं, मायं ण सेवे, पयहेज्ज लोहं॥१२॥

फासा=स्पर्श शब्दादि विषय, मंदा=विवेक-बुद्धि को मन्द करने वाले हैं, य=और, बहुलोहणिज्जा=बहुत ही लुभाने वाले हैं। मुमुक्षु को, तहप्पगारेसु=इस प्रकार के आकर्षक शब्दादि विषयों में, मणं=मन, ण कुज्जा=न लगाना चाहिए-उनमें रागपूर्वक प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए। उसे कोहं=क्रोध को, रक्खेज्ज=शान्त करना चाहिए। माणं=मान को, विणएज्ज=दूर करना चाहिए, मायं=माया का, ण सेवे=सेवन नहीं करना चाहिए और, लोहं=लोभ का, पयहेज्ज=त्याग करना चाहिए॥१२॥

जेसंखया तुच्छ परप्पवाई, ते पिज्ज-दोसाणुगया परज्झा।

एए अहम्मे त्ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीरभेओ॥१३॥ त्ति बेमि॥

जे=जो, संखया=संस्कृत यानी बाहरी दिखावे वाले, किन्तु अन्तःकरण की शुद्धि से रहित, तुच्छ=निस्सार वचन बोलने वाले, परप्पवाई=अन्य तीर्थियों के शास्त्रों की प्ररूपणा करने वाले वादी हैं, ते=वे, पिज्ज-दोसाणुगया=राग-द्वेष से युक्त हैं इस कारण, परज्झा=पराधीन हैं, एए=ये लोग, अहम्मे त्ति=अधर्म के हेतु हैं इस प्रकार जानकर उनकी, दुगुंछमाणो=जुगुप्सा करता हुआ मुमुक्षु, जाव=जब तक, सरीरभेओ=शरीर का नाश न हो तब तक जीवन पर्यन्त, गुणे=सम्यग् दर्शनादि गुणों की, कंखे=इच्छा करो। त्ति बेमि=जैसा मैंने अपने धर्मोपदेशक धर्माचार्य से सुना है, वैसा मैं कहता हूँ।

॥ चौथा अध्ययन समाप्त॥

तत्त्व विभाग

पच्चीस क्रिया

हिंसा प्रधान दुष्ट व्यापार विशेष को क्रिया कहते हैं। जिससे कर्म का आश्रव होता है ऐसी प्रवृत्ति को “क्रिया” कहते हैं। क्रिया से कर्मों का बंध होता है। कर्म बंध के कारण रूप क्रियाएँ 25 प्रकार की हैं :-

- (1) असावधानी पूर्वक हाथ, पैर आदि शरीर के व्यापार से जो क्रिया लगती है, उसे कायिकी क्रिया कहते हैं।
- (2) तलवार, बंदूक आदि उपघातक शस्त्रों का संग्रह या प्रयोग करने से लगने वाली क्रिया आधिकरणिकी क्रिया है।
- (3) जीव तथा अजीव पदार्थों के ऊपर ईर्ष्या द्वेष करने से जो क्रिया लगती है उसे प्राद्वेषिकी क्रिया कहते हैं, जैसे दूसरे को धनवान, सुखी, विद्वान, बलवान देखकर द्वेष करना, बुरा चाहना, जीव प्राद्वेषिकी क्रिया है तथा ठोकर लगने पर पत्थर आदि निर्जीव वस्तुओं पर द्वेष भाव लाना अजीव प्राद्वेषिकी क्रिया है।
- (4) अपने ही हाथों से अपना सिर, छाती आदि पीटने तथा दूसरों को पीड़ा पहुँचाने से जो क्रिया लगती है उसे परितापनिकी क्रिया कहते हैं।
- (5) जल, अग्नि, विष, शस्त्र के द्वारा आत्मघात करने तथा दूसरों का प्राण नाश करने से जो क्रिया लगती है उसे प्राणातिपातिकी क्रिया कहते हैं।
- (6) षट्काय जीवों का उपमर्दन छेदन-भेदन आदि करने से लगने वाली क्रिया आरम्भिकी क्रिया है।
- (7) परिवार दास-दासी, गाय, भैंस, पक्षी आदि जीवों का संग्रह कर ममत्व भाव रखना एवं धन, अलंकार, वस्त्र, पात्र, गृह आदि अजीव वस्तुओं पर यह मेरा है ऐसा ममत्व मूर्छा भाव रखने से लगने वाली क्रिया पारिग्रहिकी क्रिया है।
- (8) छल-कपट, झूठा लेख आदि द्वारा दूसरों को ठगने से लगने वाली क्रिया मायाप्रत्यया क्रिया है।
- (9) व्रत, नियम, त्याग, प्रत्याख्यान न करने से लगने वाली अप्रत्याख्यान

प्रत्यया क्रिया है।

- (10) वीतराग वचन से विपरीत श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं, उससे जो क्रिया लगती है उसे मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया कहते हैं।
- (11) किसी रमणीय स्त्री, पुरुष, हाथी, घोड़ा एवं दर्शनीय वस्तुओं को राग-दृष्टि से कौतुहल दृष्टि से देखने से लगने वाली क्रिया दृष्टिजा क्रिया है।
- (12) किसी रमणीय स्त्री, पुरुष, हाथी, घोड़े के अंग को राग भाव से स्पर्श करने से एवं दर्शनीय वस्तु को राग भाव से स्पर्श करने से लगने वाली क्रिया स्पर्शजा क्रिया है।
- (13) जीव-अजीव रूप किसी बाह्य वस्तुओं के निमित्त से जो राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है उससे लगने वाली क्रिया प्रात्ययिकी क्रिया है।
- (14) प्रशंसा की भावना से दर्शनीय सावद्य वस्तुओं का संग्रह करना और उन वस्तुओं की प्रशंसा किये जाने पर हर्षित होने से जो क्रिया लगती है उसे सामन्तोपनिपातिकी क्रिया कहते हैं।
- (15) अपने हाथ से किसी जीव-अजीव वस्तुओं को नष्ट करने, फेंकने, तोड़ने से लगने वाली क्रिया स्वहस्तिकी क्रिया है।
- (16) किसी जीव-अजीवादि वस्तुओं को निर्दयतापूर्वक, अयतनापूर्वक फेंकने या पटकने से लगने वाली क्रिया नैसृष्टिकी क्रिया है।
- (17) किसी पर आज्ञा चलाने से या आज्ञा देकर किसी वस्तु को मंगवाने से लगने वाली क्रिया आज्ञापनिका क्रिया है।
- (18) जीव-अजीवादि पदार्थों को चीरने, फाड़ने से अथवा किसी को ठगने के लिए किसी वस्तु की झूठी प्रशंसा करने से लगने वाली क्रिया वैदारिणिकी क्रिया है।
- (19) असावधानी से, उपयोग शून्यता से, वस्तुओं को उठाने-रखने एवं चलने से लगने वाली क्रिया अनाभोगप्रत्यया क्रिया है।
- (20) इस लोक तथा परलोक का ख्याल न करके विरुद्ध आचरण करने से लगने वाली क्रिया अनवकांक्षा प्रत्यया क्रिया है।
- (21) माया और लोभ पूर्वक व्यवहार करने से लगने वाली क्रिया प्रेमप्रत्यया

क्रिया है।

- (22) खुद क्रोध करे अथवा दूसरे को क्रोध उत्पन्न करावे या अभिमान से लगने वाली क्रिया द्वेषप्रत्यया क्रिया है।
- (23) मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति से लगने वाली क्रिया प्रायोगिकी क्रिया है।
- (24) बहुत से लोग मिलकर एक साथ, एक ही प्रकार की क्रिया करे, अच्छे बुरे दृश्य देखे या आरम्भजन्य कार्यों को साथ मिलकर करे, उसमें प्रसन्न होवे, उसे सामुदानिकी क्रिया कहते हैं।
- (25) कषाय रहित आत्माओं को केवल योग मात्र के निमित्त से लगने वाली क्रिया ईर्यापथिकी क्रिया है।



श्री भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 7 में 4 ध्यान का वर्णन आता है

एक लक्ष्य पर चित्त को एकाग्र करना ध्यान है, अथवा छद्मस्थों का अन्तर्मुहूर्त परिमाण एक वस्तु पर चित्त स्थिर रखना ध्यान कहलाता है। एक वस्तु से दूसरी वस्तु में ध्यान के संक्रमण होने पर ध्यान का प्रवाह चिरकाल तक भी रह सकता है।

ध्यान के 4 भेद :-

1. आर्त्तध्यान 2. रौद्र ध्यान 3. धर्मध्यान 4. शुक्ल ध्यान

1. आर्त्तध्यान :- दुःख के निमित्त से या दुःख में होने वाला ध्यान आर्त्तध्यान कहलाता है।

(अ) आर्त्तध्यान के 4 भेद :-

- (1) अनिष्ट संयोग :- अमनोज्ञ वस्तुओं का संयोग होने पर उनके वियोग की चिन्ता करना। इस आर्त्तध्यान का कारण द्वेष है।
- (2) इष्ट वियोग :- मनोज्ञ वस्तुओं के संयोग होने पर उसका वियोग न होने की चिन्ता करना। इस आर्त्तध्यान का कारण राग है।
- (3) रोग चिन्ता :- रोग से व्याकुल प्राणी का रोग के वियोग का चिन्तन करना।
- (4) निदान :- देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि के तप और ऋद्धि आदि देखकर या सुनकर उनमें आसक्ति लाना और यह सोचना कि मैंने जो तप, त्याग आदि धर्म कार्य किये हैं उनके फलस्वरूप मुझे भी ऋद्धि की प्राप्ति हो। इस प्रकार की संसारी चिन्ता करना।

(ब) आर्त्तध्यान के 4 लक्षण :-

1. आक्रन्दन - जोर-जोर से रोना, चिल्लाना।
2. शोचन - दीन भाव धारण करना, शोक करना।

3. तेपनता - टप-टप आंसू गिराना।
 4. परिदेवनता - बार-बार क्लिष्ट भाषण करना, विलाप करना।
- इन चार लक्षणों से आर्तध्यान जाना जाता है। राग, द्वेष, मोह युक्त प्राणी संसार की वृद्धि करता है। सामान्यतः तिर्यच गति में जाता है।

2. रौद्रध्यान :- हिंसा, झूठ, चोरी और विषय संरक्षण के लिए जो सतत् चित्त प्रवृत्ति होती है वह रौद्र ध्यान है।

(अ) रौद्रध्यान के 4 भेद :-

1. हिंसानुबन्धि - प्राणियों को निर्दयता पूर्वक मारने का निरंतर चिंतन करना।
2. मृषानुबन्धि - दूसरों को ठगने के लिए, उत्तम सिद्धान्तों को झुठलाने के लिए असत्य वचन कहने का सतत् चिंतन करना।
3. चौर्यानुबन्धि - तीव्र लोभ के वशीभूत होकर किसी भी वस्तु को चुराने या लूटने का सतत् चिंतन करना।
4. संरक्षणानुबन्धि - धन, संतान आदि के संरक्षण हेतु दूसरों का उपघात करने की कषायमयी वृत्ति का सतत् चिंतन करना।

(ब) रौद्रध्यान के 4 लक्षण :

1. ओसन्न दोष - बहुलता से हिंसा, झूठादि में से किसी एक में प्रवृत्ति करना।
2. बहुल दोष - हिंसादि सभी दोषों में प्रवृत्ति करना।
3. अज्ञान दोष - अज्ञान से कुशास्त्र में श्रद्धा, तथा हिंसादि में अथवा नाना दोष धर्म बुद्धि से प्रवृत्ति करना अथवा विविध हिंसादि के उपायों में अनेक बार प्रवृत्ति करना।
4. आमरणान्त दोष - मरणपर्यन्त क्रूर हिंसादि कार्यो में पश्चाताप न कर हिंसादि में प्रवृत्ति करते रहना।

ऐसे कठोर और संकलिष्ट परिणाम वाला, दूसरों को दुखी देखकर प्रसन्न होने वाला, ऐहिक, परलौकिक भय से रहित, अनुकम्पा भाव से रहित, अकार्य कर पश्चाताप नहीं करने वाला रौद्र ध्यानी सामान्यतः नरक गति में

जाता है।

3. धर्मध्यान :- तत्त्वों और श्रुतचरित्र रूप धर्म के संबंध में सतत् चिंतन धर्मध्यान कहलाता है।

(अ) धर्मध्यान के 4 भेद :-

1. आज्ञा विचय - जिनेश्वर देव की वाणी सत्य है, परम सत्य है। इस प्रकार का चिंतन करना।
2. अपाय विचय - राग, द्वेष कषाय आदि के दुष्परिणामों का चिंतन करना।
3. विपाक विचय - यह जीव स्वयं ही कर्मों का कर्ता है स्वयं ही कर्म के फल का भोक्ता है। इस प्रकार का चिंतन करना।
4. संस्थान विचय - चौदह राजू प्रमाण लोक का, द्वीप, समुद्र, नरक, स्वर्ग आदि के आकार का, जीव की गति-आगति, उत्पाद व्यय धौव्य का चिन्तन एवं अनादि अनन्त संसार सागर से पार करने वाली ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संवर रूपी नौका का विचार करना।

(ब) धर्मध्यान के 4 लक्षण :-

1. आज्ञा रुचि - जिनेश्वर देव की आज्ञा पर रुचि रखना।
2. निसर्ग रुचि - पर उपदेश के बिना स्वभाव से ही तत्त्वों पर श्रद्धा करना।
3. सूत्र रुचि - आगम प्रतिपादित तत्त्वों पर रुचि रखना।
4. अवगाढ़ रुचि - द्वादशांगी का विस्तार पूर्वक ज्ञान कराके जिन प्रणित भावों पर श्रद्धा रखना।

(स) धर्मध्यान के 4 आलम्बन

1. वाचना - सूत्रादि का पठन पाठन
2. पृच्छना - सूत्रादि में शंका आदि होने पर निवारण हेतु प्रश्न पूछना।
3. परिवर्तना - पढ़े हुए सूत्रादि की पुनः पुनः आवृत्ति करना।

4. अनुप्रेक्षा - सूत्रादि का चिन्तन, मनन करना।

(द) धर्मध्यान की 4 अनुप्रेक्षा (भावना) :-

1. एकत्व भावना - मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं और न मैं किसी का हूँ। ऐसा चिंतन करना।
2. अनित्य भावना - संसार के सभी पदार्थ धन-दौलत परिवार शरीर आदि की नश्वरता का चिंतन करना।
3. अशरण भावना - जन्म, जरा, मृत्यु से पीड़ित प्राणी के लिए कोई भी शरण रूप नहीं है। केवल जिनेन्द्र प्रवचन ही शरण रूप है, ऐसा चिन्तन करना।
4. संसार भावना - संसार की विचित्रताओं का चिंतन करना। जैसे- एक भव की माता अन्य भव में स्त्री, पुत्री, बहिन बन जाती है।

4. शुक्लध्यान :- जो आत्मा के आठ कर्मरूपी मैल को धोकर उसको स्वच्छ बना देता है, वह शुक्ल ध्यान है।

(अ) शुक्लध्यान के 4 भेद :-

1. पृथकत्व वितर्क सविचार - श्रुत के अनुसार विविध नयों से पदार्थों की पर्यायों का भिन्न-भिन्न रूप में चिंतन करना।
2. एकत्व वितर्क अविचार - श्रुत के अनुसार उत्पाद आदि पर्यायों के एकत्व (अभेद) से किसी एक पदार्थ का अथवा पर्याय का स्थिर चित्त से चिन्तन करना।
3. सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति - मोक्ष जाने के पहले केवली भगवान कायिकी उच्छ्वास आदि सूक्ष्म क्रियाओं का आश्रय लेकर शेष योगों को रोक देना।
4. समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती - शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली जब सब योगों का निरोध कर लेते हैं तब मानसिक, वाचिक, कायिक

क्रिया नहीं होती। आत्मप्रदेश सर्वथा निष्प्रकम्प हो जाते हैं, वह स्थिति समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती ध्यान है।

(ब) शुक्लध्यान के 4 लक्षण :-

1. अव्यथः - शुक्लध्यानी देवता, मनुष्य तिर्यच आदि के उपसर्गो से चलित नहीं होते।
2. असम्मोह - शुक्लध्यानी अत्यन्त गहन सूक्ष्म विषयों में अथवा देवादिकृत माया में सम्मोह नहीं होते।
3. विवेक - शुक्लध्यानी आत्मा को देह से एवं सर्व संयोगों से भिन्न समझते हैं।
4. व्युत्सर्ग - शुक्लध्यानी निस्संग होने से देह एवं उपधि का त्याग करते हैं।

(स) शुक्लध्यान के 4 आलम्बन

1. क्षमा - क्रोध न करना तथा उदय में आते हुए क्रोध को विफल करना। अर्थात् क्षमावन्त हों।
2. मुक्ति - उदय में आये हुए लोभ को विफल करना अर्थात् निर्लोभी हों।
3. आर्जव - माया को उदय में नहीं आने दें अर्थात् सरल हों।
4. मार्दव - मान को उदय में नहीं आने दें अर्थात् कोमल हों।

(द) शुक्लध्यान की 4 अनुप्रेक्षा

निम्न चार भावनाओं से शुक्लध्यान परिपुष्ट बनता है।

1. अनन्तानुवृत्तितानुप्रेक्षा - यह जीव अनन्तकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है।
2. विपरिणामानुप्रेक्षा - जैसे सन्ध्याकाल की लालिमा इन्द्रधनुष और ओस बिन्दु मनोहर प्रतीत होते हैं, परन्तु क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही

लघु दण्डक का थोकड़ा

श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति इसका मुख्य आधार है। इसमें 24 दण्डकों का 25 द्वारों से विश्लेषण किया गया है।

24 द्वार[●]-

- | | | |
|---------------|------------------|------------------------|
| 1. शरीर द्वार | 9. समुद्घात | 17. उपयोग |
| 2. अवगाहना | 10. संज्ञी | 18. आहार |
| 3. संहनन | 11. वेद | 19. उपपात |
| 4. संस्थान | 12. पर्याप्ति | 20. स्थिति |
| 5. कषाय | 13. दृष्टि | 21. समोहया असमोहया मरण |
| 6. संज्ञा | 14. दर्शन | 22. च्यवन |
| 7. लेश्या | 15. ज्ञान अज्ञान | 23. गति-आगति |
| 8. इन्द्रिय | 16. योग | 24. प्राण 25. योग |

गाथा- नेरइया असुराई, पुढवाई बेइन्दियादओ चेव।
पंचिन्दिय-तिरिय-नरा, वंतर-जोइसिस-वेमाणी॥१॥
संग्रहणी गाथाएं- श्री जीवाजीवभिगम सूत्र प्रथम प्रतिपत्ति
सरीरोगाहण-संघयण-संठाण-कसाय तह य हुंति
सन्नाओ लेसिंदिय-समुग्घाए सन्नीवेए य पज्जती॥१॥
दिट्ठी-दंसण-नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे।
उववाय ठिई समुग्घाय चवण-गइरागई च्चेव॥२॥
पाणे, जोगे॥

1. शरीर द्वार

प्रति समय जो जीर्ण-शीर्ण होता रहता है उसे शरीर कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं-1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. आहारक, 4. तैजस, 5. कार्मण।

1. औदारिक शरीर- उदार अर्थात् स्थूल पुद्गलों से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

● किसी भी वस्तु (स्वरूप) को समझाने के प्रकार को द्वार कहते हैं।

2. **वैक्रिय शरीर**- वैक्रिय पुद्गलों से बने हुए, जिस शरीर में विविध अथवा विशिष्ट क्रियाएं होती हैं, उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं। इस शरीर वाला एक, अनेक, छोटा, बड़ा, दृश्य, अदृश्य, आकाशाचारी तथा भूमिचर आदि अनेक रूप बना सकता है।

वैक्रिय शरीर दो तरह का होता है-औपपातिक और लब्धि प्रत्यय। उपपात जन्म वाले देव तथा नैरयिक के औपपातिक वैक्रिय शरीर होता है। मनुष्य और तिर्यञ्च के लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर होता है।

3. **आहारक शरीर**- प्राणी दया, तीर्थकर ऋद्धि दर्शन, सूक्ष्म पदार्थों में अवगाहन तथा संशय निवारण के लिए चौदह पूर्व धारी आहारक लब्धि सम्पन्न मुनिराज जघन्य देशोन एक हाथ तथा उत्कृष्ट एक हाथ का स्फटिक रत्न के समान अत्यन्त निर्मल शरीर बनाते हैं। प्राणी दया हेतु वे मुनिराज उस शरीर में रहते हुए आकाश में स्थिर रहकर उद्घोष करते हैं तथा संशय निवारण आदि हेतु बनाए गए शरीर के माध्यम से तीर्थकर भगवन्तों की सन्निधि में पहुँच कर उनसे प्रश्नादि पूछकर समाधान प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त में पुनः लौटकर आ जाते हैं। इस तरीके से जिस अत्यन्त निर्मल शरीर का आहरण यानि निर्माण किया जाता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं।

4. **तैजस शरीर**- तैजस पुद्गलों का विकार परिणाम तैजस शरीर है। उष्णता इस शरीर का चिह्न है। तैजस शरीर आहार को पचाता है।

5. **कार्मण शरीर**- जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलों को कार्मण शरीर कहते हैं। तैजस व कार्मण- ये दो शरीर सभी संसारी जीवों में होते हैं।

1. **नैरयिक और देवता में शरीर पावे** 3-वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

2. **चार स्थावर**-(पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय) और **असन्नी मनुष्य** इन पाँचों में शरीर पावे 3-औदारिक, तैजस और कार्मण। **वायुकाय** में शरीर पावे 4-औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

3. **तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यञ्च** पंचेन्द्रिय में शरीर पावे 3-औदारिक, तैजस और कार्मण।

4. **सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय** में शरीर पावे 4- औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

नैरयिक उत्तर वैक्रिय करे तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट अपनी-अपनी उ. अवगाहना से दुगुनी। जैसे-सातवीं पृथ्वी के नैरयिक की भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना 500 धनुष की है और उत्तर वैक्रिय करे तो 1000 धनुष की कर सकता है।

भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहले, दूसरे देवलोक के देवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट 7 हाथ की। आगे सभी देवों की ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग तथा उत्कृष्ट इस प्रकार है-

तीसरे, चौथे देव. के देव	-	6 हाथ
पाँचवें, छठे देव. के देव	-	5 हाथ
सातवें, आठवें देव. के देव	-	4 हाथ
नौवें से बारहवें देव. के देव	-	3 हाथ
नव ग्रैवेयक के देव	-	2 हाथ
पाँच अनुत्तर विमान के देव	-	1 हाथ

उत्तर वैक्रिय करे तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक तक एक लाख योजन की। नव ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवों में वैक्रिय करने की शक्ति तो होती है किन्तु करते नहीं हैं।

2. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और असन्नी मनुष्य-इन पाँचों की ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग। किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट असंख्यात गुणा अधिक होती है।

वनस्पतिकाय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट 1000 योजन झाड़ेरी, कमलनाल की अपेक्षा। वायुकाय के उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना ज. और उ. अंगुल के असंख्यातवें भाग।

3. तीन विकलेन्द्रिय (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय) व असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के पाँचों भेद की अवगाहना-

नोट: पृथक्त्व का अर्थ 2 से 9 तक नहीं समझना चाहिए। किन्तु उससे भी ज्यादा हो सकता है। अर्थात् 'अनेक' अर्थ उपयुक्त है। जैसे असन्नी ति. पंचे. के उरपरिसर्प की अवगाहना उत्कृष्ट 12 यो. की कही गई है यदि पृथक्त्व का अर्थ 2 से 9 तक ही लेते हैं तो उरपरिसर्प की अवगाहना संगत नहीं बैठती।

जघन्य	-	अंगुल के असंख्यातवें भाग
उत्कृष्ट	-	बेइन्द्रिय-12 योजन। तेइन्द्रिय- 3 गाऊ। चउरिन्द्रिय- 4 गाऊ।

असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के पाँच भेद-
जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प

जलचर	-	1000 योजन	यो गा ध यो ध
स्थलचर	-	पृथक्त्व गाऊ।	
खेचर	-	पृथक्त्व धनुष।	
उरपरिसर्प	-	पृथक्त्व योजन।	
भुजपरिसर्प	-	पृथक्त्व धनुष।	

4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के पाँच भेद-

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प।

इन पाँचों की जघन्य अवगाहना-अंगुल के असंख्यातवें भाग

उत्कृष्ट :-

जलचर	-	1000 योजन।	यो गा ध यो गा
स्थलचर	-	6 गाऊ।	
खेचर	-	पृथक्त्व धनुष।	
उरपरिसर्प	-	1000 योजन।	
भुजपरिसर्प	-	पृथक्त्व गाऊ।	

सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर करे तो ज. अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट पृथक्त्व 100 योजन।

5. कर्मभूमिज मनुष्यों की अवगाहना-ज. अंगुल के असंख्यातवें भाग

उत्कृष्ट 3 गाऊ। भरत व ऐरवत क्षेत्र के काल के अनुसार अवसर्पिणी काल में गर्भज मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना इस प्रकार है -

पहले आरे के प्रारम्भ में	-	3 गाऊ।
पहला पूर्ण होते और दूसरे के प्रारम्भ में	-	2 गाऊ।
दूसरा पूर्ण होते और तीसरे के प्रारम्भ में	-	1 गाऊ।
तीसरा पूर्ण होते और चौथे के प्रारम्भ में	-	500 धनुष

अर्थ वेष्टन- पट्ट (पट्टा) है और नाराच का अर्थ दोनों ओर से मर्कटबन्ध है। दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो और जिसमें इन तीनों हड्डियों को भेदने वाली हड्डी की वज्र नामक कील हो, इस प्रकार की दृढ़ता को 'वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन' कहते हैं।

2. ऋषभ-नाराच संहनन- दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो, परन्तु तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील नहीं हो, इस प्रकार की दृढ़ता को 'ऋषभ-नाराच-संहनन' कहते हैं।

3. नाराच-संहनन- दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी हड्डियाँ हों, परन्तु इनके चारों ओर वेष्टन - पट्ट और वज्र नामक कील नहीं हो, इस प्रकार की दृढ़ता को 'नाराच-संहनन' कहते हैं।

4. अर्धनाराच-संहनन- एक ओर मर्कट-बन्ध हो, इस प्रकार की दृढ़ता को 'अर्धनाराच-संहनन' कहते हैं।

5. कीलिका-संहनन- हड्डियाँ केवल कील से जुड़ी हुई हों, इस प्रकार की दृढ़ता को 'कीलिका-संहनन' कहते हैं।

6. सेवार्त्तक-संहनन- हड्डियाँ पर्यन्त भाग में एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहती हों, इस प्रकार की दृढ़ता को 'सेवार्त्तक-संहनन' कहते हैं।

1. नैरयिक और देवता में : संहनन नहीं पावे।
: नैरयिक में अशुभ पुद्गल परिणामे
और देवों में शुभ पुद्गल परिणामे।
2. पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य : एक-सेवार्त्तक संहनन
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी : एक-सेवार्त्तक संहनन
तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय : छह ही संहनन
5. कर्मभूमिज मनुष्य : छह ही संहनन
6. युगलिक मनुष्य : एक-वज्र ऋषभ नाराच संहनन
7. सिद्ध भगवान : संहनन नहीं।

4. संस्थान द्वार

नामकर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति को **संस्थान** कहते हैं। इसके छह भेद हैं-

1. **समचतुरस्र (समचोरस)**- ऊपर, नीचे तथा बीच में समभाग से शरीर की सुन्दराकार आकृति को 'समचोरस संस्थान' कहते हैं।

2. **न्यग्रोधपरिमण्डल**- वट वृक्ष के समान शरीर की आकृति अर्थात् जिसमें नाभि से ऊपर का भाग प्रशस्त विस्तृत लक्षणयुक्त पूर्ण एवं शास्त्रानुसार प्रमाण वाला हो और नाभि से नीचे का भाग हीन हो, उसे 'न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान' कहते हैं।

3. **सादि**- ऊपर वाले लक्षण से बिल्कुल विपरीत हो, जैसे साँप की बाँबी अर्थात् नाभि से नीचे का भाग उत्तम प्रमाण वाला हो और नाभि से ऊपर का भाग हीन हो, उसे 'सादि संस्थान' कहते हैं।

4. **कुब्जक (कुबड़ा)**- जिस शरीर के हाथ, पाँव, मुख और ग्रीवादिक उत्तम हों और हृदय, पेट, पीठ अधम (हीन) हों, उसे 'कुब्जक संस्थान' कहते हैं।

5. **वामन**- बौना शरीर हो अर्थात् जिस शरीर में हाथ, पाँव आदि अवयव हीन हों और छाती, पेट आदि पूर्ण हों, उसे 'वामन संस्थान' कहते हैं।

6. **हुण्डक**- जिस शरीर में सभी अंगोपांग किसी खास आकृति के न हों (खराब हों), उसे 'हुण्डक संस्थान' कहते हैं।

1. नैरयिक के भवधारणीय शरीर

व उत्तर वैक्रिय शरीर में : एक-हुण्डक संस्थान

देवताओं के भवधारणीय शरीर में : एक-समचतुरस्र संस्थान

और उत्तर वैक्रिय करें तो : विविध

2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य में : एक-हुण्डक संस्थान

3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी : एक-हुण्डक संस्थान

तिर्यञ्च पंचे. में

4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में : छः ही संस्थान

- | | |
|-------------------------|------------------------|
| 5. कर्मभूमिज मनुष्य में | : छः ही संस्थान |
| 6. युगलिक मनुष्य में | : एक-समचतुरस्र संस्थान |
| 7. सिद्ध भगवान में | : संस्थान नहीं पावे। |

5. कषाय द्वार

क्रोधादि रूप आत्मा के विभाव परिणामों को **कषाय** कहते हैं। इसके चार भेद हैं- क्रोध, मान, माया, लोभ।

- | | |
|-------------------------------|---|
| 1-6. सभी जीवों में | : चारों ही कषाय |
| नोट:- कर्मभूमिज मनुष्य | : अकषायी भी होते हैं। (11वें गुण. से 14वें गुण. तक) |
| 7. सिद्ध भगवान | : अकषायी हैं। |

6. संज्ञा द्वार

आहारादि की संवेदना विशेष को **संज्ञा** कहते हैं। इसके चार भेद हैं- 1. आहार-संज्ञा 2. भय-संज्ञा 3. मैथुन-संज्ञा 4. परिग्रह-संज्ञा।

- | | |
|--------------------------------|--|
| 1-6. सभी जीवों (24 दण्डक) में | : चारों ही संज्ञा |
| नोट :- कर्मभूमिज मनुष्य | : नोसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं। (7वें गुण. से 14वें गुण. तक) |
| 7. सिद्ध भगवान में | : संज्ञा नहीं, नोसंज्ञोपयुक्त हैं। |

7. लेश्या द्वार

योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को **लेश्या** कहते हैं। इसके छह भेद हैं-

1. कृष्ण लेश्या, 2. नील लेश्या, 3. कापोत लेश्या 4. तेजो लेश्या, 5. पद्म लेश्या, 6. शुक्ल लेश्या।

- | | |
|--------------------------------------|---|
| 1. पहली व दूसरी पृथ्वी के नैरयिक में | : एक-कापोत लेश्या |
| तीसरी पृथ्वी के नैरयिक में | : दो-कापोत व नील लेश्या |
| चौथी पृथ्वी के नैरयिक में | : एक-नील लेश्या |
| पाँचवीं पृथ्वी के नैरयिक में | : दो-नील और कृष्ण लेश्या |
| छठी पृथ्वी के नैरयिक में | : एक-कृष्ण लेश्या |
| सातवीं पृथ्वी के नैरयिक में | : एक-महाकृष्ण लेश्या |
| भवनपति व वाणव्यंतर देवों में | : चार-कृष्ण, नील, कापोत, तेजो |
| ज्योतिषी व पहले दूसरे देव. में | : एक-तेजो लेश्या |
| तीसरे, चौथे, पाँचवें देवलोक में | : एक-पद्म लेश्या |
| छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक | : एक-शुक्ल लेश्या |
| पाँच अनुत्तर विमान में | : एक-परम शुक्ल लेश्या |
| 2. पृथ्वीकाय, अप्काय, वन.काय में | : चार (प्रथम चार) |
| तेउ., वायु. व असन्नी मनुष्य में | : तीन-कृष्ण, नील, कापोत |
| 3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी | |
| तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में | : तीन- कृष्ण, नील व कापोत |
| 4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में | : छहों लेश्या |
| 5. कर्मभूमिज मनुष्य में | : छहों लेश्या व अलेशी भी।
(14वें गुण. में) |
| 6. युगलिक मनुष्य में | : चार-(प्रथम चार) |
| 7. सिद्ध भगवान में | : लेश्या नहीं, अलेशी हैं। |

8. इन्द्रिय द्वार

इन्द्र का अर्थ 'आत्मा'। जिसके माध्यम से छद्मस्थ आत्मा शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श का ज्ञान करती है, उसे इन्द्रिय कहते हैं।

इसके पाँच भेद हैं- 1. श्रोतेन्द्रिय, 2. चक्षुरिन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय, 4. रसनेन्द्रिय 5. स्पर्शेन्द्रिय।

‘मारणांतिक समुद्घात’ कहलाता है।

4. **वैक्रिय समुद्घात**—वैक्रिय रूपों का निर्माण करने हेतु वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिये आत्म-प्रदेशों का एक दिशा अथवा विदिशा में संख्यात योजन तक का दण्ड निकालना (मोटाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण-दण्ड होता है) ‘वैक्रिय समुद्घात’ कहलाता है। इसमें वैक्रिय नाम कर्म की क्षपणा होती है।

5. **तैजस समुद्घात**—शीतल अथवा उष्ण तेजोलेश्या किसी पर डालने हेतु तैजस पुद्गलों को ग्रहण करने के लिये संख्यात योजन तक का एक दिशा अथवा विदिशा में आत्म-प्रदेशों का दंड निकालना (यह भी मोटाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण ही होता है) ‘तैजस समुद्घात’ कहलाता है। इसमें तैजस नामकर्म की क्षपणा होती है।

6. **आहारक समुद्घात**—जीवदया, ऋद्धि दर्शन, सूक्ष्म पदार्थों में अवगाहन या संशय निवारण हेतु चौदह पूर्वधारी मुनि द्वारा आहारक पुतला बनाने हेतु आहारक वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए संख्यात योजन का आत्म-प्रदेशों का दण्ड निकालना (मोटाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण दण्ड होता है) ‘आहारक समुद्घात’ कहलाता है। इसमें आहारक शरीर नामकर्म की क्षपणा होती है।

7. **केवली समुद्घात**—वेदनीय आदि कर्मों को खपाने के लिये चार समयों में आत्मप्रदेशों को समग्र लोक में फैला देना एवं चार समयों में पुनः संकोचित करके शरीरस्थ हो जाना केवली समुद्घात कहलाता है। इसमें आयु से अधिक स्थिति वाले वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मों की क्षपणा होती है। जिनकी आयु कम व वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति अधिक होती है, उनकी स्थिति सम करने के लिये ‘केवली समुद्घात’ करते हैं। केवली समुद्घात के अन्तर्मुहूर्त बाद अवश्य मोक्ष हो जाता है।

1. नैरयिकों में : 4 समुद्घात—वेदनीय, कषाय, मारणांतिक और वैक्रिय

भवनपति से यावत् 12वें

देवलोक तक : अनुक्रम से 5 समुद्घात

नवग्रैवेयक व पाँच अनुत्तर में भी : 5 समुद्घात शक्ति से पावे

किन्तु करते हैं : 3—वेदनीय, कषाय, मारणांतिक

2. चार स्थावर (पृथ्वी., अप्.,तेऊ, वन.) व असन्नी मनुष्य में वायुकाय में : 3-वेदनीय, कषाय, मारणांतिक
: 4-वेदनीय, कषाय, मारणांतिक और वैक्रिय
3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में : 3-वेदनीय, कषाय, मारणांतिक
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में : 5-वेदनीय, कषाय, मारणांतिक वैक्रिय, तैजस
5. कर्मभूमिज मनुष्य में : 7 (सभी)
6. युगलिक मनुष्य में : 3-वेदनीय, कषाय, मारणांतिक
7. सिद्ध भगवान में : समुद्घात नहीं।

10. सन्नी द्वार

जिसके मन हो उसे **संज्ञी** और जिसके मन नहीं हो उसे **असंज्ञी** कहते हैं।

1. पहली पृथ्वी के नैरयिक, भवनपति और वाणव्यन्तर में : सन्नी-असन्नी दोनों उत्पन्न होते हैं, असन्नी कुछ देर बाद सन्नी हो जाते हैं।
दूसरी पृथ्वी के नैर. से 7वीं पृथ्वी के नैर. तक, ज्योतिषी से पाँच अनुत्तर विमान तक : सन्नी
2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य : असन्नी
3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी तिर्यञ्च पंचे. : असन्नी
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय : सन्नी
5. कर्मभूमिज मनुष्य : सन्नी, नोसन्नी नोअसन्नी भी (13वें, 14वें गुण. की अपेक्षा)

6. युगलिक मनुष्य : सन्नी
 7. सिद्ध भगवान : सन्नी नहीं, असन्नी नहीं,
 नोसन्नी नोअसन्नी हैं।

11. वेद द्वार

नामकर्म के उदय से होने वाले शरीर के स्त्री, पुरुष, नपुंसक रूप चिह्न को **द्रव्य वेद** तथा जीव की विषय भोग की अभिलाषा को **भाव वेद** कहते हैं। इसके तीन भेद होते हैं-1. स्त्री वेद, 2. पुरुष वेद, 3. नपुंसक वेद।

1. नैरयिक में : एक-नपुंसक वेद
 भवपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी
 पहला व दूसरा देवलोक में : दो-स्त्री वेद, पुरुष वेद
 तीसरे देव. से सर्वार्थसिद्ध तक : एक-पुरुष वेद
 2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य में : एक-नपुंसक वेद
 3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी
 तिर्यञ्च पंचे. में : एक-नपुंसक वेद
 4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में : तीनों वेद
 5. कर्मभूमिज मनुष्य में : तीनों वेद व अवेदी भी (9वें
 गुण. से 14वें गुण. तक)
 6. युगलिक मनुष्य में : दो-स्त्री वेद, पुरुष वेद
 7. सिद्ध भगवान में : वेद नहीं, अवेदी हैं।

12. पर्याप्ति द्वार

आहारादि के पुद्गलों को ग्रहण करने तथा उन्हें आहार, शरीरादि रूप में परिणमानों की आत्म शक्ति विशेष को **पर्याप्ति** कहते हैं। इसके छह भेद होते हैं- 1. आहार पर्याप्ति, 2. शरीर पर्याप्ति, 3. इन्द्रिय पर्याप्ति, 4. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, 5. भाषा पर्याप्ति, 6. मन पर्याप्ति।

- | | | |
|---|---|--|
| 1. नैरयिक में | : | 6 पर्याप्ति |
| देव में | : | 5 (भाषा व मन दोनों एक साथ पूर्ण करते हैं) |
| 2. पाँच स्थावर में | : | 4-आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास |
| असन्नी मनुष्य | : | चौथी पर्याप्ति का अपर्याप्ता रहते ही मर जाते हैं। |
| 3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय | : | 5-आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास व भाषा पर्याप्ति |
| 4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय | : | 6 पर्याप्ति |
| 5. कर्मभूमिज मनुष्य | : | 6 पर्याप्ति |
| 6. युगलिक मनुष्य | : | 6 पर्याप्ति |
| 7. सिद्ध भगवान | : | नो पर्याप्त-नो अपर्याप्त हैं। |

13. दृष्टि द्वार

तत्त्व विचारणा की रूचि को दृष्टि कहते हैं। इसके तीन भेद होते हैं।

1. सम्यग् दृष्टि, 2. मिथ्या दृष्टि, 3. सम्यग् मिथ्या (मिश्र) दृष्टि।
- सम्यग् दृष्टि**- वीतराग देव की वाणी में अखण्ड श्रद्धा रखने वाला।
- मिथ्या दृष्टि**- वीतराग वाणी को देशतः या सर्वतः मिथ्या मानता है।
- सम्यग् मिथ्या (मिश्र) दृष्टि**- वीतराग वाणी के प्रति न रूचि हो न अरूचि हो।

- | | | |
|----------------------------------|---|--------------------------------|
| 1. नैरयिक और भवनपति से नव | : | 3 दृष्टि-सम्यग्, मिथ्या, |
| प्रैवेयक तक | | सम्यग्मिथ्या |
| 15 परमाधार्मिक व 3 किल्बिषी | : | 1-मिथ्या दृष्टि |
| 5 अनुत्तर विमान | : | 1-सम्यग् दृष्टि |
| 2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य | : | 1-मिथ्या दृष्टि |
| 3. तीन विकले. व असन्नी ति. पंचे. | : | 2-सम्यग् दृष्टि, मिथ्या दृष्टि |

4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय : 3-सम्यग्, मिथ्या, सम्यग्
मिथ्या
5. कर्मभूमिज मनुष्य : 3-सम्यग्, मिथ्या, सम्यग्
मिथ्या
6. युगलिक मनुष्य-30 अकर्मभूमि, : 2-सम्यग्, मिथ्या
56 अन्तर्द्वीप : 1-मिथ्या दृष्टि
7. सिद्ध भगवान : 1-सम्यग् दृष्टि।

14. दर्शन द्वार

जिसमें महासत्ता (सामान्य) का प्रतिभास (निराकार झलक) हो, उसको दर्शन कहते हैं। इसके चार भेद हैं-

1. **चक्षु दर्शन**- नेत्रजन्य आभिनिबोधिकज्ञान (मतिज्ञान) से पहले होने वाले सामान्य प्रतिभास या अवलोकन को 'चक्षु दर्शन' कहते हैं।
2. **अचक्षु दर्शन**- नेत्र के सिवाय दूसरी इन्द्रियों और मन सम्बन्धी आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) के पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को 'अचक्षु दर्शन' कहते हैं।
3. **अवधि दर्शन**- अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को 'अवधि दर्शन' कहते हैं।
4. **केवल दर्शन**- केवलज्ञान के बाद होने वाले सामान्य धर्म के अवलोकन (उपयोग) को 'केवल-दर्शन' कहते हैं।*

1. नैरयिक व देवों में : 3-चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन
2. पाँच स्थावर में : 1-अचक्षु दर्शन
असन्नी मनुष्य में : 2-चक्षु, अचक्षु दर्शन
3. बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय में : 1-अचक्षु दर्शन
चउरिन्द्रिय व असन्नी ति. पंचे. में : 2-चक्षु, अचक्षु दर्शन

★ छद्मस्थों में पहले दर्शन का उपयोग होता है, बाद में ज्ञान का उपयोग होता है। अछद्मस्थों (केवली) में पहले ज्ञान का उपयोग होता है, फिर दर्शन का उपयोग होता है।

4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में : 3-चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन
 5. कर्मभूमिज मनुष्य में : 4-चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल दर्शन
 6. युगलिक मनुष्य में : 2-चक्षु, अचक्षु दर्शन
 7. सिद्ध भगवान में : 1-केवल दर्शन।



15. ज्ञान- अज्ञान द्वार

किसी विवक्षित पदार्थ के विशेष धर्म को विषय करने वाला बोध **ज्ञान** कहलाता है। इसके दो भेद हैं- सम्यग् ज्ञान, मिथ्या ज्ञान।

सम्यग् ज्ञान के पाँच भेद हैं- 1. आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, 2. श्रुतज्ञान, 3. अवधिज्ञान, 4. मनः पर्ययज्ञान, 5. केवलज्ञान।

1. **आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान** - इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान हो, उसे आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान कहते हैं।

2. **श्रुतज्ञान**- आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान से जाने हुए पदार्थ को विशेष एवं स्पष्टरूप से दूसरे पदार्थ के ज्ञान को 'श्रुतज्ञान' कहते हैं। जैसे- "घट" शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न हुआ कंबुग्रीवादिरूप घट का ज्ञान।

3. **अवधिज्ञान**- मन व इन्द्रियों की सहायता के बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानें।

4. **मनः पर्ययज्ञान**- मन व इन्द्रियों की सहायता के बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो साधु सन्नी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मन में रही हुई पर्यायों को स्पष्ट जानें।

5. **केवलज्ञान**- जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् स्पष्ट जानें।

मिथ्याज्ञान के तीन भेद हैं- 1. **मतिअज्ञान**, 2. **श्रुतअज्ञान**, 3. **विभंगज्ञान**। ये तीन अज्ञान हैं।

1. नैरयिक व भवनपति से : 3 ज्ञान-आभिनिबोधिक (मति) नवग्रैवेयक तक ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान
 3 अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत

		अज्ञान, विभंग ज्ञान
15 परमाधार्मिक व 3 किल्बिषी	:	3 अज्ञान
5 अनुत्तर विमान	:	3 ज्ञान (पूर्वोक्त)
2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य	:	2 अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान
3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय	:	2 ज्ञान-आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, श्रुत ज्ञान, 2 अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय	:	3 ज्ञान (पूर्वोक्त), 3 अज्ञान
5. कर्मभूमिज मनुष्य	:	5 ज्ञान व 3 अज्ञान
6. युगलिक मनुष्य-30 अकर्मभूमि	:	2 ज्ञान-आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, श्रुत ज्ञान 2 अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान
56 अन्तर्द्वीप	:	2 अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान
7. सिद्ध भगवान	:	1-केवल ज्ञान

-----●-----

16. योग द्वार

मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। इसके 15 भेद हैं- 4 मन के, 4 वचन के और 7 काया के।

4 मन के - 1. सत्य मनोयोग, 2. मृषा मनोयोग, 3. सत्यमृषा मनोयोग, 4. असत्यमृषा मनोयोग।

4 वचन के - 1. सत्य वचनयोग, 2. मृषा वचन योग, 3. सत्यमृषा वचन योग, 4. असत्यमृषा वचन योग।

7 काया के - 1. औदारिक काय योग, 2. औदारिक मिश्र काय योग, 3. वैक्रिय काय योग, 4. वैक्रिय मिश्र काय योग, 5. आहारक काय

योग, 6. आहारक मिश्र काय योग, 7. कार्मण काय योग*।

1. नैरयिक और देवों में योग : 11-4 मन, 4 वचन, 3 काया (वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र, कार्मण काय योग)
2. चार स्थावर व असन्नी मनुष्य : 3-औदारिक, औदारिक मिश्र, कार्मण वायुकाय : 5-औदा., औदा. मिश्र, वै., वै. मिश्र, कार्मण काय योग
3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी : 4-व्यवहार भाषा, औदा., औदा. तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय मिश्र, कार्मण काय योग
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय : 13-4 मन, 4 वचन, 5 काया (औदा., औदा. मिश्र, वै., वै. मिश्र, कार्मण काय योग)
5. कर्मभूमिज मनुष्य : 15-सभी व अयोगी भी होते हैं (14वें गुण. में)
6. युगलिक मनुष्य : 11-4 मन, 4 वचन, 3 काया (औदा. औदा. मिश्र, कार्मण काय योग)
7. सिद्ध भगवान : अयोगी होते हैं।

17. उपयोग द्वार

ज्ञान और दर्शन में होती हुई आत्म प्रवृत्ति को **उपयोग** कहते हैं। इसके 12 भेद होते हैं- 5 ज्ञान के, 3 अज्ञान के, 4 दर्शन के।

1. नैरयिक व देवों में नवग्रैवेयक तक : 9 (3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन)
15 परमाधार्मिक व 3 किल्बिषी : 6 (3 अज्ञान, 3 दर्शन)
5 अनुत्तर विमान : 6 (3 ज्ञान, 3 दर्शन)
2. पाँच स्थावर : 3 (मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, अचक्षु दर्शन)
असन्नी मनुष्य : 4 (मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षु

★ तैजस शरीर की स्वतः कहीं प्रवृत्ति नहीं होती इसलिए तैजस काय योग नहीं होता है।

	दर्शन, अचक्षु दर्शन)
3. बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय	: 5 (2 ज्ञान, 2 अज्ञान, एक अचक्षु दर्शन)
चउरिन्द्रिय व असन्नी ति. पंचे.	: 6 (2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन)
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय	: 9 (3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन)
5. कर्मभूमिज मनुष्य	: 12 (5 ज्ञान, 3 अज्ञान, 4 दर्शन)
6. युग. मनुष्य-30 अकर्मभूमि	: 6 (2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन)
56 अन्तर्द्वीप	: 4 (2 अज्ञान, 2 दर्शन)
7. सिद्ध भगवान	: 2 (केवल ज्ञान, केवल दर्शन)

18. आहार द्वार

जीव के द्वारा शरीर के निर्माण, धारण अथवा पोषण के लिए ग्रहण किए जाने वाले पुद्गलों को **आहार** कहते हैं।

जीव 288 प्रकार के पुद्गलों का आहार करता है। आहार तीन प्रकार का होता है- सचित, अचित, मिश्रा प्रकारान्तर से भी आहार के तीन भेद होते हैं- ओज (शरीर द्वारा), रोम (त्वचा द्वारा), प्रक्षेपाहार (केवल द्वारा जो ग्रहण किया जाता है।)

1. नैरयिक व देवता	: आहार लेवे-288 भेद [●] का छः दिशाओं से
2. पाँच स्थावर	: 288 भेद का, कदाचित् 3, कदाचित् 4, कदाचित् 5 दिशाओं का, निर्व्याघात की अपेक्षा छः

● 288 भेद :- द्रव्य से-अनंत प्रदेशी, क्षेत्र से-असंख्यात प्रदेशावगाद, काल से 12 भेद-एक समय की स्थिति के पुद्गलों का यावत् दस समय, संख्यात समय, असंख्यात समय की स्थिति के पुद्गलों का लेवे, भाव से 260 भेद-एक गुण काला यावत् दस गुण काला, संख्यात गुण, असंख्यात गुण और अनंत गुण काला। इसी तरह तेरह-तेरह भेद करने से (वर्णादि 20x13), स्पृष्ट, अवगाद, अनंतरावगाद, सूक्ष्म, बादर, ऊँचे, नीचे, तिष्ठे, आदि, मध्य, अन्त, स्वविषय, आनुपूर्वी और नियम पूर्वक छः दिशाओं का ग्रहण करें। (1+1+12+260+14)=288 हुए।

	दिशाओं से
असन्नी मनुष्य	: 288 भेद का, छः दिशाओं से
3. तीन विकलेन्द्रिय असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय	: 288 भेद का, छः दिशाओं से
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय	: 288 भेद का, छः दिशाओं से
5. कर्मभूमिज मनुष्य	: 288 भेद का, छः दिशाओं से व अनाहारक भी (13वें, 14वें गुण. में)
6. युगलिक मनुष्य	: 288 भेद का, छः दिशाओं से
7. सिद्ध भगवान	: आहारक नहीं, अनाहारक होते हैं।

19. उपपात द्वार

जीव पूर्वभव से आकर उत्पन्न हो, उसे उपपात कहते हैं।

1. नैरयिक व भवनपति से 8वें देव. तक	: एक समय में -जघन्य 1, 2, 3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात उत्पन्न होवे।
नौवें देव. से सर्वार्थसिद्ध तक	: जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट संख्यात।
2. चार स्थावर में वनस्पति काय में असन्नी मनुष्य में	: प्रति समय निरन्तर असंख्यात उपजे : प्रति समय अनन्त उपजे : जघन्य 1,2,3 यावत् संख्यात उ. असंख्यात उपजे
3. तीन विकले. व असन्नी ति. पंचे.	: जघन्य 1,2,3 यावत् संख्यात उ. असंख्यात
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय	: जघन्य 1,2,3 यावत् संख्यात उ. असंख्यात
5. कर्मभूमिज मनुष्य	: जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट संख्यात

▼ 13वें गुण. में केवलिसमुद्घात की अपेक्षा।

6. युगलिक मनुष्य : जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट संख्यात
7. सिद्ध भगवान : जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 108 सिद्ध होते हैं।

20. स्थिति द्वार

जीव जितने काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे स्थिति कहते हैं।

समुच्चय नैरयिक एवं देवता की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट 33 सागरोपम की।

पहली पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य 10 हजार वर्ष उ. 1 सागरोपम की।
दूसरी पृथ्वी के नैरयिकों की ज. एक सागरोपम उ. 3 सागरोपम की।
तीसरी पृथ्वी के नैरयिकों की ज. 3 सागरोपम उ. 7 सागरोपम की।
चौथी पृथ्वी के नैरयिकों की ज. 7 सागरोपम उ. 10 सागरोपम की।
पाँचवी पृथ्वी के नैरयिकों की ज. 10 सागरोपम उ. 17 सागरोपम की।
छठी पृथ्वी के नैरयिकों की ज. 17 सागरोपम उ. 22 सागरोपम की।
सातवीं पृथ्वी के नैरयिकों की ज. 22 सागरोपम उ. 33 सागरोपम की।
भवनपति देव के असुरकुमार जाति के दो इन्द्र हैं- चमरेन्द्रजी और बलिन्रजी।

चमरेन्द्र के रहने की चमरचंचा राजधानी, जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत से दक्षिण दिशा में अधोलोक में हैं। बलिन्रजी के रहने की बलिचंचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत से उत्तर दिशा में अधोलोक में हैं।

चमरेन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति

जघन्य 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट एक सागरोपम।

उनकी देवी की ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट साढ़े तीन (3½) पल्योपम।

शेष नौ जाति के दक्षिण दिशा के भवनपति देवों की स्थिति-

ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट डेढ़ (1½) पल्योपम।

उनकी देवी ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट पौन (¾) पल्योपम।

बलिन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति

ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट एक सागरोपम झाड़ेरा।

उनकी देवी ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट साढ़े चार (4½) पल्योपम।

शेष नौ जाति के उत्तर दिशा वाले भवनपति देवों की स्थिति :-

ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम।

उनकी देवी ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट देशोन एक पल्योपम।

वाणव्यन्तर देवों की स्थिति ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट 1 पल्योपम।

उनकी देवी की ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट अर्द्ध (½) पल्योपम।

ज्योतिषी देवों की स्थिति

ज्योतिषी देवों के पाँच भेद :- 1. चन्द्र 2. सूर्य 3. ग्रह 4. नक्षत्र और

5. तारा।

चन्द्र- विमानवासी देवों की स्थिति-

ज. पाव पल्योपम उ. 1. पल्योपम 1 लाख वर्ष।

देवी- ज. पाव पल्योपम उ. आधा पल्योपम और 50 हजार वर्ष।

सूर्य- विमानवासी देवों की स्थिति-

ज. पाव पल्योपम उ. 1. पल्योपम 1 हजार वर्ष।

देवी- ज. पाव पल्योपम उ. आधा पल्योपम 500 वर्ष।

ग्रह- विमानवासी देवों की स्थिति -

ज. पाव पल्योपम उ. 1 पल्योपम।

देवी- ज. पाव पल्योपम उ. आधा पल्योपम।

नक्षत्र- विमानवासी देवों की स्थिति-

ज. पाव पल्योपम उ. आधा पल्योपम।

देवी- ज. पाव पल्योपम उ. पाव पल्योपम झाड़ेरा।

तारा- विमानवासी देवों की स्थिति-

ज. पल्योपम के आठवें भाग (1/8) उ. पाव पल्योपम।

देवी- ज. पल्योपम के आठवें भाग उ. पल्योपम के आठवें भाग झाड़ेरा।

वैमानिक देवों की स्थिति

पहले देवलोक के देवों की स्थिति ज. 1 पल्योपम, उ. 2 सागरोपम।

उनकी देवियां दो प्रकार की हैं- 1. परिगृहीता और 2. अपरिगृहीता।

परिगृहीता देवियों की स्थिति ज. 1 पल्योपम उ. 7 पल्योपम।

अपरिगृहीता देवियों की स्थिति ज. 1 पल्योपम उ. 50 पल्योपम।

दूसरे देवलोक के देवों की स्थिति ज. 1 पल्योपम झा. उ. 2 सागरोपम झाझरा।

परिगृहीता देवियों की स्थिति	ज. 1 पल्यो. झा. उ. 9 पल्यो.।
अपरिगृहीता देवियों की स्थिति	ज. 1 पल्यो. झा. उ. 55 पल्यो.।
तीसरे देव. के देवों की स्थिति	ज. 2 सागरोपम उ. 7 सागरो.।
चौथे देव. के देवों की स्थिति	ज. 2 सागरो. झा. उ. 7 सागरो.झा.।
पाँचवें देव. के देवों की स्थिति	ज. 7 सागरो. उ. 10 सागरो.।
छठे देव. के देवों की स्थिति	ज. 10 सागरो. उ. 14 सागरो.।
सातवें देव. के देवों की स्थिति	ज. 14 सागरो. उ. 17 सागरो.।
आठवें देव. के देवों की स्थिति	ज. 17 सागरो. उ. 18 सागरो.।
नौवें देव. के देवों की स्थिति	ज. 18 सागरो. उ. 19 सागरो.।
दसवें देव. के देवों की स्थिति	ज. 19 सागरो. उ. 20 सागरो.।
ग्यारहवें देव. के देवों की स्थिति	ज. 20 सागरो. उ. 21 सागरो.।
बारहवें देव. के देवों की स्थिति	ज. 21 सागरो. उ. 22 सागरो.।
पहले ग्रैवेयक के देवों स्थिति	ज. 22 सागरो. उ. 23 सागरो.।
दूसरे ग्रैवेयक के देवों स्थिति	ज. 23 सागरो. उ. 24 सागरो.।
तीसरे ग्रैवेयक के देवों स्थिति	ज. 24 सागरो. उ. 25 सागरो.।
चौथे ग्रैवेयक के देवों स्थिति	ज. 25 सागरो. उ. 26 सागरो.।
पाँचवें ग्रैवेयक के देवों स्थिति	ज. 26 सागरो. उ. 27 सागरो.।
छठे ग्रैवेयक के देवों स्थिति	ज. 27 सागरो. उ. 28 सागरो.।
सातवें ग्रैवेयक के देवों स्थिति	ज. 28 सागरो. उ. 29 सागरो.।
आठवें ग्रैवेयक के देवों स्थिति	ज. 29 सागरो. उ. 30 सागरो.।
नौवें ग्रैवेयक के देवों स्थिति	ज. 30 सागरो. उ. 31 सागरो.।

चार अनु. विमान के देवों की स्थिति ज. 31 सागरो. उ. 33 सागरो.।

सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों की स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट 33 सागरो.।

पहली किल्विषी की स्थिति-3 पल्योपम

दूसरी किल्विषी की स्थिति-3 सागरोपम

तीसरी किल्विषी की स्थिति-13 सागरोपम

9 लोकान्तिक देवों की स्थिति-8 सागरोपम

2. **पृथ्वीकाय** की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 22 हजार वर्ष।

अपूकाय की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 7 हजार वर्ष।

तेउकाय की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 3 अहोरात्रि।

वायुकाय की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 3 हजार वर्ष।

वनस्पतिकाय की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 10 हजार वर्ष ।

असन्नी मनुष्य की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त।

3. **बेइन्द्रिय** की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 12 वर्ष।

तेइन्द्रिय की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 49 अहोरात्रि।

चउरिन्द्रिय की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 6 महीने।

असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के पाँच भेद-

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प।

जलचर की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. एक करोड़ पूर्व।

स्थलचर की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 84 हजार वर्ष।

खेचर की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 72 हजार वर्ष।

उरपरिसर्प को स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 53 हजार वर्ष।

भुजपरिसर्प की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. 42 हजार वर्ष।

4. **सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की स्थिति-**

जलचर की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. एक करोड़ पूर्व।

स्थलचर की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. तीन पल्योपम।

खेचर की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. पल्योपम के

असंख्यातवें भाग।

उरपरिसर्प की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त उ. एक करोड़ पूर्व।

- जो गेंद (दड़ी) की गति से समुद्घात करके मरे अथवा बन्दूक की गोली की तरह जीव के प्रदेश एक साथ निकले उसे **असमोहयामरण** कहते हैं।
- 1.-6. 24 दण्डक के जीव : दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।
 2. सिद्ध भगवान में : मरण नहीं।

22. च्यवन द्वार

जीव वर्तमान भव को छोड़कर अन्य भव की पर्याय को धारण करे उसे **च्यवन** कहते हैं।

1. नैरयिक व भवनपति से 8वें : जघन्य 1, 2, 3 यावत् संख्यात देवलोक तक उत्कृष्ट असंख्यात च्यवे
नौवें देव. से सर्वार्थ सिद्ध तक : जघन्य 1,2,3 उ. संख्यात च्यवे
2. चार स्थावर में : प्रति समय असंख्यात च्यवे
वनस्पति काय में : प्रति समय अनन्त च्यवे
असन्नी मनुष्य में : ज. 1,2,3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात च्यवे
3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी : जघन्य 1,2,3 यावत् संख्यात तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में उत्कृष्ट असंख्यात च्यवे
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचे. में : जघन्य 1,2,3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात च्यवे
5. कर्मभूमिज मनुष्य में : जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट संख्यात च्यवे
6. युगलिक मनुष्य में : जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट संख्यात च्यवे
7. सिद्ध भगवान में : च्यवन (मरण) नहीं।

23. गति-आगति द्वार

जीव मरकर भवान्तर में जावे उसे “गति” एवं भवान्तर से आकर उत्पन्न होने को आगति कहते हैं।

1. 1 से 6 पृथ्वी के नैरयिक : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 2 (20, 21)
: गति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 2 (20, 21)
सातवीं पृथ्वी के नैरयिक : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 2 (20, 21)
: गति 1 (ति. गति)
दण्डक 1 (20वाँ)
भवन., वाण., ज्यो., 1 व 2 देव. : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 2 (20, 21)
: गति 2 (ति. गति, मनु. गति) दण्डक
5 (12, 13, 16, 20, 21) पृ.,
अप्., वन., ति.पंचे., मनु.
3 से 8 देवलोक : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 2 (20, 21)
: गति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 2 (20, 21)
9वें देव. से सर्वार्थ सिद्ध तक : आगति 1 (मनुष्य गति) दण्डक
1 (21)
: गति 1 (मनुष्य गति)
दण्डक 1 (21)
2. पृथ्वी., अप्., वन. : आगति 3 (ति. गति, मनु. गति,
देव गति)
दण्डक 23 (नैरयिक के अलावा)
: गति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 10 (5 स्थावर, 3 विकले.

- , 1 ति. पंचे., 1 मनुष्य)
- तेउ., वायु. : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 10 (औदारिक)
- : गति 1 (ति. गति) दण्डक 9
(मनुष्य के अलावा 9 औदारिक)
- असन्नी मनुष्य : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 8 औदा. (तेउ., वायु. नहीं)
- : गति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 10 (औदारिक)
3. तीन विकलेन्द्रिय : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 10 (औदारिक)
- : गति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 10 (औदारिक)
- असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
दण्डक 10 (औदारिक)
- : गति 4 (न., ति., मनु., दे.) दण्डक
22 (वैमा. ज्यो. नहीं)
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय : आगति 4 (चारों गति)
दण्डक 24
- : गति 4 (चारों गति) दण्डक 24
5. कर्मभूमिज मनुष्य : आगति 4 (चारों गति)
दण्डक 22 (तेउ., वायु. नहीं)
- : गति 4 (चारों गति) दण्डक 24
6. युगलिक मनुष्य : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
(30 अकर्म भूमि) दण्डक 2 (20, 21)
- : गति 1 (देव गति)
दण्डक 13 (10 भवन.,
1 वाण., 1 ज्यो., 1 वैमा.)
- 56 अन्तर्द्वीप : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)

- दण्डक 2 (20, 21)
 : गति 1 (देव गति)
 दण्डक 11 (10 भवन., 1 वाण.)
 7. सिद्ध भगवान : आगति 1 (मनुष्य गति) दण्डक
 1 (मनुष्य)
 : गति नहीं।

24. प्राण द्वार

जीवन के आधारभूत पदार्थों को अर्थात् जिनके सद्भाव से जीव किसी शरीर के साथ बंधा रहे उसे प्राण कहते हैं। इसके 10 भेद हैं-

1. श्रोतेन्द्रिय बलप्राण, 2. चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण, 3. घ्राणेन्द्रिय बलप्राण, 4. रसनेन्द्रिय बलप्राण, 5. स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण, 6. मनोबल प्राण, 7. वचन बलप्राण, 8. काया बलप्राण, 9. श्वासोच्छ्वास बलप्राण 10. आयुष्य बलप्राण।

- | | | |
|-------------------------|---|---|
| 1. नैरयिक व देवता में | : | प्राण पावे 10 |
| 2. पाँच स्थावर में | : | 4-स्पर्श., काय., श्वासो., आयुष्य |
| असन्नी मनुष्य में | : | 7*-पाँच इन्द्रिय, काय व आयुष्य |
| 3. बेइन्द्रिय में | : | 6-रसने., स्पर्श., वचन., काय,
श्वासोच्छ्वास, आयुष्य |
| तेइन्द्रिय में | : | 7-उपरोक्त 6 व घ्राणेन्द्रिय बल प्राण |
| चउरिन्द्रिय में | : | 8-उपरोक्त 7 व चक्षुन्द्रिय बल प्राण |
| असन्नी ति. पंचे. में | : | 9-उपरोक्त 8 व श्रोतेन्द्रिय बल प्राण |
| 4. सन्नी ति. पंचे. में | : | 10 सभी |
| 5. कर्मभूमिज मनुष्य में | : | 10 सभी |
| 6. युगलिक मनुष्य में | : | 10 सभी |

❖ अपर्याप्त जीव श्वासोच्छ्वास नाम का बंध नहीं करता। -कर्म ग्रंथ -5
 पर्याप्त पूर्ण होने पर ही तत्संबंधी प्राण मानना चाहिए। पर्याप्त पूर्ण न होने पर प्राण का अभाव मानना चाहिए, अधुरापन नहीं। असंज्ञी मनुष्य में श्वासोच्छ्वास पर्याप्त पूर्ण नहीं होती, अतः उसमें सात प्राण माने जाने चाहिए, सात झाड़ेरा या आठ माटेरा नहीं।

7. सिद्ध भगवान में : द्रव्य प्राण नहीं, भाव प्राण-4 (ज्ञान, दर्शन, सुख और आत्म शक्ति)।

25. योग द्वार

मन, वचन, काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति को योग कहते हैं। योग के तीन भेद- 1. मनयोग, 2. वचन योग, 3. काययोग।

1. नैरयिक व देवता में : 3 योग
2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य : 1 काययोग
3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय : 2-वचनयोग, काययोग
4. सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय : 3 योग
5. कर्मभूमिज मनुष्य : 3 योग व अयोगी भी (14वें गुणस्थान में)
6. युगलिक मनुष्य : 3 योग
7. सिद्ध भगवान : योग नहीं, अयोगी होते हैं।

कर्म निर्जरा का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र, शतक 16, उद्देशक 4

बसंतपुर नामक नगरी में कोई बहुत गुणधारी मुनिराज पधारे। पहले प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान और तीसरे प्रहर में गोचरी पधारे। गृहस्थी के घर में बखत कच्ची मिली, ठिकाणे आये मन में विचार किया, जब तक आहार-पानी न मिले तब तक चौविहार का पच्चक्खाण । स्वाध्याय, ध्यान कर फिर गोचरी के लिए पधारे।

(1) भगवन्! इतने समय में अन्नग्लायक निःस्पृह भाव से जो भी शीत, चावल, अन्न, प्रान्त आदि आहार प्राप्त हो उसी से निर्वाह करने वाले तपस्वी श्रमण के जो कर्मों की निर्जरा हुई क्या उतने कर्मों की निर्जरा नैरयिक जीव एक वर्ष में, अनेक वर्षों में अथवा सौ वर्षों में खपाता है?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

(2) भगवन्! कोई चतुर्थ भक्त (उपवास) करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है क्या उतने कर्म नैरयिक जीव, नरक में 100 वर्ष में, अनेक 100 वर्ष में या 1000 वर्षों में खपाता है?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

(3) भगवन्! कोई षष्ठ भक्त (बेला) करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्म क्षय करता है उतने कर्म नैरयिक जीव नरक में 1000 वर्षों में, अनेक हजार वर्षों में या 1 लाख वर्षों में क्षय करता है?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

(4) भगवन्! कोई अष्टभक्त (तेला) करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म नैरयिक जीव, नरक में एक लाख वर्षों में, अनेक लाख वर्षों में या एक करोड़ वर्षों में क्षय करता है?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

(5) भगवन्! कोई दशम-भक्त (चौला) करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म नैरयिक जीव, नरक में एक करोड़ वर्षों में, अनेक करोड़ वर्षों में या क्रोड़ा-कोड़ी वर्षों में खपाता है?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

कथा विभाग

1. सत्यवादी राजा हरिशचंद्र

सरयू नदी के किनारे अयोध्या नाम की सुरम्य नगरी में हरिशचंद्र नामक राजा थे। राजा न्याय नीति सम्पन्न थे। उनकी कीर्ति यश पताका दिग्-दिगन्त तक फैली हुई थी। उनका राज्य सत्य का राज्य कहलाता था। उनकी रूप-गुणशील सम्पन्न तारा नाम की रानी थी।

इंद्र द्वारा प्रशंसा- एक बार देवलोक में इंद्र द्वारा राजा हरिशचंद्र के सत्य गुण की प्रशंसा की गई। इंद्र ने कहा- मृत्युलोक में अयोध्या का राजा हरिशचंद्र सत्यवादी है जैसे साक्षात् सत्य ही हरिशचंद्र के रूप में है। जिस प्रकार मेरु पर्वत अचल है उसी प्रकार हरिशचंद्र का सत्य भी अचल है। राजा हरिशचंद्र को सत्य से विलग करने में कोई भी समर्थ नहीं है। सत्य पालन में हरिशचंद्र अद्वितीय है। उसकी समानता करने वाला दूसरा कोई नहीं है।

इंद्र द्वारा हरिशचंद्र की प्रशंसा सुनकर देव, देवी, अप्सरादि तो प्रसन्न हुए किन्तु एक देव को प्रशंसा अच्छी नहीं लगी। वह देव क्रोध, ईर्ष्या और द्वेष से भर गया। उसे मृत्युलोक के मनुष्य की प्रशंसा सुनना अपमान लगा। तब उस देव ने हरिशचंद्र को सत्य से डिगाने के लिए कुछ अप्सराओं का सहयोग लेने की युक्ति सोची।

षडयंत्र- अयोध्या नगरी में विश्वामित्र नाम के ऋषि का आश्रम था जो तपस्वी होने के साथ-साथ प्रचण्ड क्रोधी स्वभाव वाले थे। देव ने विश्वामित्र को राजा हरिशचंद्र पर क्रोधित करने की योजना बनाई। उसने अप्सराओं को ऋषि के आश्रम में भेजा तथा आदेश दिया- विश्वामित्र के उपवन को यत्र-तत्र नष्ट करो। विश्वामित्र के क्रोध से तुम किंचित भय न करना, वे जो दण्ड दे उसको सहन करती हुई राजा हरिशचंद्र की शरण लेना। वह तुम्हें दण्ड के कष्ट से मुक्त कर देगा। बस तुम्हारा इतना ही काम है।

देव का आदेश पाकर वे अप्सराएँ विश्वामित्र के आश्रम में क्रीड़ाएं करती हुई उपवन को नष्ट करने लगीं। ऋषि शिष्यों ने उन्हें रोका परन्तु वे न मानीं। शिष्यों का जब उन अप्सराओं पर वश न चला तो वे गुरु विश्वामित्र के पास पहुँचे तथा ऋषि से कहा- अप्सराएँ उपवन नष्ट कर रही

हैं तथा हमारे मना करने पर भी अपना अधिकार बताते हुए हँस-हँस कर हमारा उपहास कर रही हैं। कृपया आप ही उपवन की रक्षा कीजिए। शिष्यों की बात सुनते ही ऋषि की आंखें क्रोध से लाल हो गईं। वे तुरन्त उपवन की ओर गए तथा तीव्र क्रोधपूर्वक अप्सराओं को अपने कृत्य के लिए माफी मांगने के लिए कहा। अप्सराएं बिल्कुल भी भयभीत न हुई बल्कि ऋषि का ही उपहास करने लगीं। उनके इस प्रकार के व्यवहार से ऋषि का क्रोध और बढ़ गया और उन्होंने अपने तप के प्रभाव से इन अप्सराओं को लताओं के द्वारा वृक्षों से बाँध दिया।

नित्य की तरह राजा हरिश्चंद्र राज्य कार्य से निवृत्त होकर घूमने निकले। तब वह देव भी एक सेवक का रूप बनाकर राजा के साथ हो गया तथा वह राजा को युक्ति पूर्वक उपवन की ओर ले गया। राजा हरिश्चंद्र को आते देखकर अप्सराएँ जोर-जोर से क्रन्दन करने लगीं, जिससे आकृष्ट होकर राजा उपवन में गए तथा अप्सराओं से बंधन का कारण जाना। राजा ने कहा- ऋषि के आश्रम में विघ्न करना उचित नहीं है। तुम्हारे क्रीड़ा आमोद-प्रमोद के लिए नगर में अन्य स्थल की कमी नहीं है, फिर भी ऋषि मुनि का कार्य दण्ड देने का नहीं है, दण्ड देने का कार्य तो मेरा है। राजा ने अपने सत्य के प्रभाव से उन्हें मुक्त कर दिया तथा भविष्य में ऐसा कृत्य न करने का आदेश दिया। अप्सराएँ हरिश्चंद्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपने स्थान लौट गईं।

न्यायसभा में विश्वामित्र- शिष्यों ने ऋषि मुनि को सूचना दी कि राजा हरिश्चंद्र ने अप्सराओं को मुक्त कर दिया है। इतना सुनते ही ऋषि का क्रोध भड़क गया। राजा पर क्रोध करने के कारण वे रात भर सो न सके। प्रातःकाल होते ही ऋषि राजा के सम्मुख न्याय हेतु उपस्थित हो गए। राजा ऋषि के सम्मान में जैसे ही सिंहासन से उतरने लगे तो ऋषि रोषपूर्वक बोले- मैं यह पूजा या सम्मान पाने नहीं आया हूँ। यहाँ तुम न्यायाधीश हो, मैं न्याय कराने आया हूँ। राजा ने ऋषि को आसन दिया तथा सम्मान के साथ पूछा- कहिए महाराज! आप किस बात का न्याय चाहते हैं? आदेश दीजिए!

ऋषि बोले- जिस प्रकार तुम राजा हो उसी प्रकार हम भी योगी है। जैसा तुम्हारा राज्य पर अधिकार है वैसा हमारा आश्रम पर अधिकार है। जिस प्रकार राज्य में अपराध करने वाले को दण्ड राजा देता है उसी प्रकार आश्रम

में अपराध करने वाले को मैं दण्ड दे सकता हूँ या नहीं? हरिशचंद्र- ऋषिवर! आश्रम राज्य सीमा के ही अन्तर्गत है। अतः वहाँ अपराध करने वाला राज्य में अपराध करने वाला होगा तथा राज्य द्वारा ही वह दण्डित होगा। इसलिये यह अधिकार राजा को या राज्य द्वारा नियुक्त कर्मचारी को प्राप्त है।

विश्वामित्र- हमने अपराधियों को तप बल से बांध दिया। लेकिन मेरे प्रतिद्वंद्वी ने मेरी अवज्ञा कर उन्हें छोड़ दिया। अब छोड़ने वाला अपराधी है या नहीं?

राजा- ऋषिवर कल यह कार्य तो मैंने ही किया था। वे अप्सराएँ वृक्ष लता से बँधी हुई दुःख पाती हुई करुण क्रन्दन कर रही थी अतः दया करके मैंने छोड़ दिया। यह केवल दया ही नहीं वरन् मेरा कर्तव्य भी था कि अनाधिकृत रूप से यदि किसी को बन्दी बनाकर रखे तो बन्दी को मुक्त कर बन्दी बनाने वाले को उचित दण्ड भी दूँ। मैंने तो केवल उन्हें छोड़ा है। कोई अपराध नहीं किया है।

विश्वामित्र यह सुनकर निराश हो गए। असमंजस में पड़ गए कि राजा के कथन को सही मानता हूँ तो सभा में मेरा अपमान होता है। उन्हें राजभवन आने की भूल का अहसास हो गया। इसलिए किसी दूसरे उपाय से राजा को अपना अपराध स्वीकार करने के लिए बाध्य करना चाहिए। यह सोचकर भरी सभा में प्रसन्नता दिखाते हुए ऋषि बोले- तूने राजधर्म को पालने के लिए यदि अप्सराओं को छोड़ा है तो फिर सभी बातों में राजधर्म का पालन करोगे न?

हरिशचंद्र- अवश्य।

विश्वामित्र- राजधर्म में दान करना भी है। राजा से की गई याचना खाली नहीं जाती है। मैं तुमसे ससागर पृथ्वी और तेरे राज्य वैभव की याचना करता हूँ। राजा हरिशचंद्र ने प्रसन्न होकर कहा- ऋषिवर! राज्य तो क्या, अगर मेरा शरीर भी माँगते तो मैं उसे भी अर्पण कर देता।

राज्य-दान- राजा ने तत्काल सेवक को आज्ञा देकर पृथ्वी का पिण्ड (पृथ्वी दान में मिट्टी का पिण्ड दान दिया जाता है तथा जितनी पृथ्वी दान देने की होती है उसका उच्चारण किया जाता है।) तथा जल लाने को कहा।

यह देखकर विश्वामित्र चकराए तथा राजा से बोले-ससागर पृथ्वी दान देने के बाद तुम्हारे पास क्या बचेगा? अच्छी तरह सोच विचार कर दान करें।

विश्वामित्र ने राजा को अनेक प्रकार की बातों से अपराध स्वीकार करने के लिए बाध्य किया किन्तु हरिश्चंद्र अपने संकल्प में दृढ़ रहे और उन्होंने राज्य का दान दे दिया। दान लेने के बाद विश्वामित्र ने कहा- दान के पश्चात दक्षिणा दिया जाना आवश्यक है। अतः दान के अनुपात में दक्षिणा भी होनी चाहिए।

हरिश्चंद्र- ऋषिवर! दक्षिणा भी लीजिए। प्रधान कोष से एक हजार स्वर्ण मुद्राएं ला दो।

विश्वामित्र- (क्रोधपूर्वक) राजन् तुमने राज्य का दान दिया है या मेरा उपहास कर रहे हो। जब राज्य तुम्हारा नहीं है तो राज्य के कोषालय पर तुम्हारा अधिकार कैसे हो सकता है?

हरिश्चंद्र ने तत्काल भूल स्वीकार कर क्षमा मांगी तथा विनम्रता से कहा-“ऋषिवर! एक सहस्र स्वर्ण मुद्राओं का मुझ पर आपका ऋण है। एक माह में मैं उसे अवश्य चुका दूँगा।

विश्वामित्र- जरा विचार करो राजा, यह ऋण तुम कब से चुकाओगे? राजन्! अपना हठ छोड़ दो तथा अपराध स्वीकार कर लो।

हरिश्चंद्र- ऋषिवर! हठ मेरा नहीं आपका है। राज्य के लोभ से तथा कष्ट के भय से मैं सत्य का लोप करके झूठ बोलूँ? ऐसा नहीं हो सकता।

विश्वामित्र- अच्छा, तुम अपना हठ मत छोड़ो। मैं अवधपति राजा के लिए आज्ञा देता हूँ कि तू पत्नी, पुत्र सहित आज ही नगर का त्याग कर दे। एक भी पैसे की वस्तु तुझे ले जाने का अधिकार नहीं है तथा एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएं देने में एक माह से एक भी दिन अधिक का तुम्हें अधिकार नहीं है।

राजा हरिश्चंद्र का नगर त्याग- राज्य का दान कर हरिश्चंद्र महल से निकलकर रानी तारा के महल में गए। रानी पुत्र सहित उपवन में गई हुई थी। राजा भी उपवन में पहुँचे तथा राजा ने आद्योपान्त वृत्तान्त रानी को सुना दिया। रानी ने राजा के कार्य की बहुत प्रशंसा की तथा अपना अहोभाग्य माना। राजा ने रानी से आग्रहपूर्वक कहा- ऋण मुक्त होने तक तुम्हें तुम्हारे पिता के यहाँ पहुँचा दूँ। तुम वन के तथा प्रवास के दुःख सहन नहीं कर सकोगी। तारा ने कहा- आपकी सेवा के बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकती हूँ। आप मुझे अपने से विलग मत कीजिए।

राजा समझ गए, रानी मेरा साथ नहीं छोड़ेगी। अतः उन्होंने पुत्र सहित नगर छोड़ने के लिए तैयार होने को कहा तथा एक कोड़ी भी साथ न लेने का संकेत दिया।

नगर में यह संवाद फैलते ही प्रजा में खलबली मच गई। प्रजा विश्वामित्र को बुरा कहने लगी। राजा हरिश्चंद्र के बिना होने वाले दुःख की कल्पनाओं से लोग सिहर उठे। वे विश्वामित्र को अपना सर्वस्व न्यौछावर करके अपने प्रिय राजा को रोकना चाहते थे।

इधर विश्वामित्र विचार कर रहे थे कि मैं क्या करने आया था और क्या हो गया? मैं राजा का मानमर्दन करने आया था किन्तु स्वयं ही राज्य के बंधन में बंध गया। हरिश्चंद्र को दण्डित करने के स्थान पर स्वयं ही दण्डित हो गया। मैंने स्वयं ही राज्य की बेड़ी पहन ली। मेरी स्वतंत्रता को मैंने अपने हाथों खो दिया।

हरिश्चंद्र, तारा और पुत्र रोहित राजसी वेश त्याग कर दीनवेश धारण कर राजमहल से बाहर निकले तथा विश्वामित्र को प्रणाम कर जाने की आज्ञा माँगी। फिर प्रजा को हित-शिक्षा देकर राजा-रानी नगर त्याग कर वन की ओर प्रस्थान कर गए।

काशी नगर में- जंगल की विपत्तियों का सामना करते हुए तीन दिन में राजा, रानी काशी पहुँचे। वहाँ एक धर्मशाला में छोटी-सी कोठरी किराए पर ली। राजा मजदूरों में शामिल हो गए तथा रानी आसपास के घरों में काम करने लगी। गरीब स्थिति में किन्तु स्वाभिमानपूर्वक रूखा-सुखा खाकर जीवन व्यतीत करने लगे।

ऋण चिन्ता- राजा-रानी मजदूरी कर जीवन-यापन कर रहे थे लेकिन विश्वामित्र का ऋण उन्हें चैन नहीं लेने देता। ऋण की चिन्ता में राजा व्यथित हो गए। अनेक उपाय करने पर भी ऋण की चिन्ता कम नहीं होती। राजा की दुःखी अवस्था रानी से देखी नहीं जाती। वह राजा को धैर्य बँधाती। राजा की चिन्ता में रानी भी दुःखी हो गई। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। आखिरकार ऋण चुकाने का अंतिम दिन आ गया तभी विश्वामित्र कोठरी के द्वार पर पहुँच गए। विश्वामित्र क्रोधपूर्वक बोले- कहाँ है हरिश्चंद्र? तारा धैर्यपूर्वक बोली- ऋषिवर! आपका ऋण अवश्य देना है। इस समय क्षमा कीजिए और कृपा करके कुछ अवधि और दे दीजिए।

विश्वामित्र- तेरा पति कहाँ है? उससे कह दे कि बाहर निकल। वह तो अंदर छुप गया है और तुझे बाहर भेजा है। मैं उससे ऋण मांगने आया हूँ। आज सूर्यास्त पूर्व मुझे ऋण चुकाए या फिर अपराध स्वीकार कर ले तो ऋण एवं राज्य दोनों छोड़ दूँगा।

तारा- महाराज हमें सत्य छोड़ने के लिए मत कहिए। हमें धन वैभव से सत्य अधिक प्रिय है। कृपा करके आप तो ऋण मुक्ति का कोई उपाय बता दीजिए। फिर भी हम ऋण न चुकाएँ तो अवश्य अपराधी हैं।

विश्वामित्र ने कहा- मैं उपाय बताता हूँ। तुम बाजार में जाकर बिको और मेरा ऋण चुकाओ।

तारा- आपने ठीक उपाय बताया महाराज, यह उपाय हमारी बुद्धि में नहीं आया था, नहीं तो आपको इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता। मैं आपको धन्यवाद देती हूँ तथा आप निश्चित रहिए आज ही सूर्यास्त के पूर्व हम आपका ऋण चुका देंगे।

तारा की बात सुनकर विश्वामित्र आश्चर्य चकित रह गए। मन ही मन हरिश्चंद्र तारा की सत्यनिष्ठा पर धन्यवाद देने लगे।

स्व-विक्रय- सत्य की रक्षा के लिए रानी तारा एक ब्राह्मण के हाथ तथा राजा हरिश्चंद्र चाण्डाल के हाथ बिक गए। दोनों ने दासत्व स्वीकार कर लिया। बालक रोहित माता के साथ रहने लगा। राजा-रानी अपने दायित्व, कर्त्तव्य का निर्वाह करने लगे। किन्तु ब्राह्मण पुत्र की रानी पर कुदृष्टि के कारण भोजन भी पूर्ण नहीं मिल पाता। रोहित माता के भोजन में से भोजन करता तो विचारता- मेरी माता मेरे लिए भूखी रहती है। रोहित स्वयं उद्यम कर स्वतंत्र जीवन निर्वाह की बात सोचने लगा। वह जंगल जाता, फल आदि लाता, स्वयं खाता और माता को भी खिलाता।

इधर राजा हरिश्चंद्र चाण्डाल के यहाँ श्मशान की रखवाली करते हुए (दासत्व का कार्य) समय व्यतीत करने लगे।

विपत्ति वज्र- राजा-रानी के जीवन का क्रम शांति से चल रहा था। किन्तु वह दुष्ट देव जिसने हरिश्चंद्र को सत्य से भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी, वह विश्वामित्र के क्रोध द्वारा जब सत्य से भ्रष्ट नहीं कर सका तब उसने तारा से उसका पुत्र छीनने का कुटिल उपाय सोचा।

रोहित नित्य की तरह वन में गया किन्तु देवमाया से उसे एक भी वृक्ष

अकेली तारा पुत्र की अंत्येष्टि की चिन्ता में बैठी थी। किसी तरह शव को कंधे पर उठाकर काशी की गलियों में जिधर से मृतकों को ले जाते देखती उस ओर चल दी। लड़खड़ाती, गिरती, पड़ती, ठोकरें खाती हुई श्मशान पहुँची।

श्मशान में- अमावस्या की घोर अंधकारमय रात्रि में हरिशचंद्र चाण्डाल के दासत्व को स्वीकार कर श्मशान की रखवाली कर रहे थे। सहसा उन्हें किसी स्त्री के रूदन की आवाज सुनाई दी। आवाज की दिशा में जा पहुँचे तथा उन्होंने पूछा- देवी! तुम कौन हो तथा श्मशान में अकेली क्यों रो रही हो? अपने समीप पुरुष की आवाज सुनकर तारा सहमी। तारा ने कहा तुम कौन हो? तुम यमराज हो क्या? मेरे पुत्र को लेने आए हो? मैं अपने पुत्र को नहीं दूँगी।

हरिशचंद्र ने कहा- मैं यमदूत नहीं, मनुष्य ही हूँ तथा श्मशान की रखवाली करता हूँ। तुम्हारे पुत्र के अंतिम संस्कार में जलाई जाने वाले लकड़ी के मूल्य के लिए तुम्हें एक टका देना पड़ेगा, तब तुम्हारे पुत्र का अंतिम संस्कार होगा। रानी ने कहा- मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। कृपा कर आप इसे बिना कर लिए ही जलाने दीजिए?

इसी वार्तालाप के बीच मेघाच्छन्न आकाश में बिजली चमकी। बिजली के प्रकाश में दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। राजा-रानी पुत्र शोक में अधीर हो उठे तथा विलाप करते-करते मूर्च्छित हो गए। जल-कण मिश्रित शीतल पवन से उनकी मूर्च्छा दूर हुई।

अंतिम कसौटी- राजा-रानी के सामने पुत्र के दाह संस्कार की समस्या खड़ी हुई। हरिशचंद्र कहने लगे- तारा! मेरे स्वामी की आज्ञा है कि एक टका कर लिए बगैर मैं शव दहन के लिए लकड़ी नहीं दे सकता। अतः एक टका कर लाओ।

तारा- मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है। पुत्र का दाह संस्कार आप कर दीजिए।

हरिशचंद्र ने कहा- जिस सत्य धर्म की रक्षा के लिए हमने राज्य को त्याग दिया। तुम ब्राह्मण के हाथ बिकी, मैंने चाण्डाल का दासत्व स्वीकार किया। क्या उस सत्य धर्म को एक टके के लिए हम जाने दें ? इसलिए बिना कर के पुत्र के अंतिम संस्कार की आशा छोड़ दो और कर चुकाने का

कोई उपाय करो।

तारा ने कहा- आपका कथन यथार्थ है। आप स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन न करें। मेरे पास जो पहनने की साड़ी है। उसकी आधी साड़ी एक टके से ज्यादा की ही होगी। मैं आधी साड़ी से तन ढक लूँगी। आधी साड़ी फाड़कर जैसे ही राजा को दी वैसे ही आकाश में दिव्य प्रकाश प्रकट हो गया। देव दुदुंभी बजने लगी। देवता पुष्प वर्षा करते हुए हरिशचंद्र तारा की जयघोष करने लगे।

आकाश से पुष्प वृष्टि, प्रकाश और जयघोष सुनकर राजा-रानी चकित रह गए। उसी समय एक देव आकाश से उतरकर आया तथा रोहित पर से अपनी माया हटाई। माया हटते ही रोहित उठ खड़ा हुआ। देव राजा-रानी से अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा। राजा-रानी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। राजा ने कहा- मैं नहीं जानता आप कौन हैं तथा आपने क्या अपराध किया है? देव ने अपना परिचय देकर इंद्रसभा में हरिशचंद्र के सत्य की प्रशंसा तथा हरिशचंद्र को सत्यभ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा, अप्सराओं को भेजना, विश्वामित्र को क्रोधित करना, रोहित को सर्प बनकर डसना, यह सब कार्य मैंने अपने अभिमान की पूर्ति एवं ईर्ष्यावश किये किन्तु आप सत्य से विचलित नहीं हुए। मेरा अभिमान दूर हुआ। मैंने आपको बहुत कष्ट दिए। आप मुझे क्षमा कर दीजिए तथा बार-बार पश्चाताप पूर्वक क्षमा माँगने लगा।

पुनः राज्य स्थापना एवं दीक्षा- इधर राजा हरिशचंद्र के चले जाने से अवध की जनता दुःखी हो गई। विश्वामित्र प्रजा के हृदय में स्थान न पा सके। विश्वामित्र ने अपने को अपने ही जाल में फंसा पाया। निराश एवं विवश हो गए। उन्होंने प्रजा को आमंत्रित किया तथा अपने कृत्यों के लिए क्षमा मांगी तथा पुनः हरिशचंद्र को राजा बनाने की इच्छा व्यक्त की। हरिशचंद्र को पुनः राज्य सिंहासन पर आरूढ़ करने की अभिलाषा से राजा-रानी को ढूँढने के लिए वे काशी पहुँचे।

इधर काशी की जनता को बहुत पश्चाताप हुआ। हमने राजा-रानी को नहीं पहचाना। ब्राह्मण परिवार, चाण्डाल परिवार सहित समस्त नगरजनों ने राजा-रानी से क्षमा मांगी तथा पश्चाताप किया। इधर विश्वामित्र भी राजा को ढूँढते हुए काशी पहुँचे। श्मशान में प्रकाश तथा हरिशचंद्र के जयघोष का कोलाहल सुनकर वे भी वहाँ पहुँचे तथा राजा से अपने अपराध की क्षमा

माँगकर पुनः राज्य भार लेने का आग्रह करने लगे। हरिशचंद्र द्वारा दान में दी हुई वस्तु लेने का इंकार करने पर इंद्रदेव आदि ने आग्रह किया। हरिशचंद्र को पुनः राज्य में स्थापित किया गया। न्याय नीति पूर्वक राज्य करते हुए निश्चित समय पर राज्यासन पर कुमार रोहित को बैठाकर राज्याभिषेक किया। राज्यभार रोहित को सौंपकर राजा हरिशचंद्र एवं महारानी तारा ने अनेक स्त्री-पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहण की। अनेक प्रकार के तप त्याग करते हुए मुक्तिपथ की ओर अग्रसर हुए।

2. महासती सुभद्रा

बसंतपुर का नगर सेठ था जिनदास। उसके एक अत्यन्त रूपलावण्यवती सुशील कन्या थी- सुभद्रा! नगर भर में सुभद्रा के समान रूपवती और गुणवती कोई दूसरी कन्या नहीं थी।

चंपानगरी का एक धनाढ्य युवक व्यापार के लिए बसंतपुर में आया हुआ था। सुभद्रा के सौंदर्य ने उसे मोहित कर लिया। पता लगाकर वह सेठ जिनदास के घर पहुँचा। बात ही बात में सुभद्रा की चर्चा चली। युवक ने आश्चर्यपूर्वक पूछा- “तो क्या सुभद्रा अभी तक अविवाहित ही है ?”

“जी! विवाह के लिए तो हजारों निमंत्रण आए। पर प्यारी बिटिया की एक शर्त है?”

“क्या?”

“यही कि वह ऐसा जीवन साथी पसंद करेगी, जो उसी के समान भगवान महावीर का अनुयायी हो, धर्म का विद्वान और धर्माचरण में दृढ़ हो।”

युवक की आशाओं पर पानी गिर पड़ा। वह भी दिखने में बड़ा सुंदर था, व्यवहारकुशल था, धनाढ्य भी था, किन्तु तथागत बुद्ध का अनुयायी! सुभद्रा के पिता जिस प्रकार अपने को ‘जिनदास’ कहने में गौरव अनुभव करते, उसी प्रकार यह युवक भी बुद्ध की भक्ति में विभोर होकर अपने को ‘बुद्धदास’ कहने में गौरवान्वित समझता था। युवक ने अपनी चिंता को भीतर ही छिपा लिया और अन्य बातें करते हुए वह उठकर अपने स्थान पर चला गया। कुछ देर वह विचारों की उधेड़बुन में उलझ गया। एक ओर सुभद्रा के

दिव्य सौन्दर्य की लालसा, दूसरी ओर धर्म परिवर्तन का प्रश्न! बुद्धदास को रात भर नींद नहीं आई। सोचते-सोचते एक रास्ता उसे सूझ गया। “सुभद्रा को पाने के लिए कुछ दिन के लिए जैनधर्म स्वीकार कर लूं?” बुद्धदास प्रातः उठते ही जैन मुनियों के पास पहुँचा। बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ वह जैन धर्म का ज्ञान प्राप्त करने लगा। वह साधुओं की संगति में बैठकर ज्ञान और वैराग्य की गंभीर चर्चा करता। असली भक्ति से भी नकली भक्ति में ज्यादा आकर्षण होता है। कुछ ही दिनों में बुद्धदास सेठ जिनदास की आँखों में चढ़ गया। सुभद्रा भी जब कभी मुनियों के पास इस सुंदर युवक को तत्व चर्चा करते देखती तो कुछ क्षण रुक कर वह भी उसमें रस लेने लगती।

बुद्धदास की नकली भक्ति ने अपना रंग जमा लिया। सेठ जिनदास ने बुद्धदास से सम्पर्क बढ़ाया और एक दिन सुभद्रा का पाणिग्रहण बुद्धदास के साथ संपन्न हो गया। सुभद्रा भी अत्यन्त प्रसन्न थी कि रूप-यौवन धन के साथ ज्ञान-संपन्न पति पाकर वह सौभाग्यवती बनी है और बुद्धदास के तो मनमाने पासे गिर ही गए।

बुद्धदास सुभद्रा को लेकर अपने घर चंपानगरी को आया। सास-ननद आदि ने बहुरानी की बलैया ली। बिरादरी में मिठाइयां बांटी। सौम्य, सुंदर वधु को देखकर पूरा परिवार हर्षित हो गया।

ससुराल में पहले ही दिन सुभद्रा अपने नियमानुसार प्रातः उठी। एकांत में आसन पर बैठकर- णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं- जपने लगी। बुद्धदास की आँखें खुली, सुभद्रा अपना मंगलपाठ करती जा रही थी- “अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि”- बुद्धदास चौंक कर उठा। ‘हैं ! यह क्या कर रही हो? देखती नहीं, चारों ओर “बुद्धं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि’ के स्वर्ण लेख लिखे हुए हैं, उन्हें नहीं पढ़ कर तुम यह क्या जपने लगी हो?’

सुभद्रा अपने मौन में थी, वह चुपचाप अपना पाठ करती रही। सास-ननद ने भी उसका यह क्रियाकांड देखा तो बस, वे तो आग-आग हो उठी। सुभद्रा को बड़ा आश्चर्य और खेद हुआ कि जो बुद्धदास जैन मुनियों के चरणों में बैठकर गंभीर धर्म चर्चा करता, वह तो कट्टर बौद्ध है और उसके रंग-रंग में जैनधर्म के प्रति घृणा भरी है। असहिष्णु तो इतना कि किसी को अपनी धर्मारधना करते नहीं देख सकता। जिसे सोना समझा वह

मिट्टी निकला। जब पति की यह स्थिति है तो ननद और सास की बात ही क्या? अब पग-पग पर सुभद्रा को टोका जाने लगा। उसके धर्म और भगवान पर व्यंग्य कसे जाने लगे- “बहुरानी! महावीर का नाम मेरे घर में लिया तो खबरदार है। भगवान बुद्ध का स्मरण करो, वही तुम्हें सद्बुद्धि और सद्गति देंगे।”

सुभद्रा के धैर्य का प्याला भरने लगा। उसने विनयपूर्वक सास से कहा-“माताजी ! आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है क्योंकि मैं आपकी बहू बनकर घर में आई हूँ। किन्तु धर्म और भगवान तो अपनी आत्मा की वस्तु है, किसी के कहने से वह मैं नहीं छोड़ सकती। और फिर मेरा धर्म आपके लिए कभी अहितकर नहीं होगा, क्या किसी के धर्म का उपहास करना और किसी को जबर्दस्ती धर्म बदलवाना मानवता है ?

सुभद्रा की बातों से सास आग-बबूला हो उठी। “अच्छा! मुझे भी तुम मानवता की बात सिखा रही हो! मेरी प्यार भरी बातों से नहीं, किन्तु बुद्धदास की लातों और डंडों से ही तेरी बुद्धि ठिकाने लगेगी।”

सास को कलह करते देखकर सुभद्रा चुप हो गई और मन ही मन णमोक्कार मंत्र जपने लगी। सुभद्रा के मौन जाप ने आग में घी का काम कर डाला। सास ने अच्छी तरह से बुद्धदास के कान भर दिए।

बुद्धदास ने सुभद्रा से कहा- “सुभद्रा! मैंने कई बार तुम्हें समझा दिया है, एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। एक घर में दो धर्म नहीं चल सकते। तुम अपना भला चाहती हो तो केवल भगवान बुद्ध का स्मरण करो, “अरिहंते सरणं” की जगह ‘बुद्धं सरणं गच्छामि’ बोला करो। इससे तुम्हारा मान-सम्मान भी बढ़ेगा, सब लोग तुम्हारा आदर करेंगे और मुझे भी तुम अधिक प्यारी लगेगी।”

सुभद्रा ने पति के चरण छूकर कहा- “पतिदेव! घर में आप जो आज्ञा करेंगे वही काम मैं कर सकती हूँ। किन्तु धर्म के विषय में आप मुझे कुछ मत कहिए। वह मैं किसी अन्य के लिए नहीं, किन्तु अपनी आत्मा के लिए करती हूँ।

बुद्धदास- “प्रिये ! मैं कभी नहीं चाहता कि तुम मेरे घर में रहकर दूसरे के भगवान को पूजो! तुम्हें मेरे ही भगवान की पूजा करनी होगी। वर्ना तुम्हारी जिद्द तुम्हारे ही गले की फांसी बन जाएगी।”

सुभद्रा इस बार कुछ दृढ़ता के साथ बोली- “पतिदेव! यदि आपको मेरे धर्म से द्वेष है, तो फिर मुझे पाने के लिए जैन धर्म स्वीकारने का स्वांग क्यों रचा था? क्या वह छल-प्रपंच, ढोंग और धोखा सिर्फ मुझे पाने के लिए ही किया था? क्या अपने स्वार्थों के लिए मनुष्य इतना धोखा भी दे सकता है।”

बुद्धदास ने तेवर बदल कर कहा- “सुभद्रे! तुम छोटे मुंह बड़ी बात करने लगी हो। जानती हो इस जिद्द का फल क्या होगा? अपमान! कष्ट! और ! जब तक ‘बुद्धं सरणं गच्छामि’ नहीं कहोगी, मैं तुमसे नहीं बोलूंगा।”

सुभद्रा मौन होकर सुनती रही। बुद्धदास मन ही मन फुसफुसाता चला गया। सुभद्रा ने भी दृढ़ निश्चय कर लिया था, चाहे जो हो जाए, मैं धर्म को नहीं छोड़ूंगी। वह उसी प्रकार निर्भय होकर अपने व्रत-नियमों का पालन करती रही, सामायिक पाठ आदि समय पर सम्पन्न करती रही। पति, सास और घर के सभी लोग पग-पग पर सुभद्रा को तंग करने की चेष्टा करते, पर वह पत्थर बनकर सब कुछ सहती गई, इस आशा में कि समय पर सबको सद्बुद्धि आएगी और उसके संकट दूर टलेंगे।

एक दिन सुभद्रा सामायिक-पाठ आदि करके उठी ही थी कि प्रातःकाल की पुण्यवेला में एक अभिग्रहधारी मुनि को अपने घर की ओर आते देखकर पुलक उठी। उसने वन्दना कर भिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की। मुनि ने भिक्षा पात्र को नीचे रखा और स्थिर होकर खड़े हो गए।

सुभद्रा ने भावपूर्वक शुद्ध आहार दिया और फिर हर्ष विभोर हो वन्दना करके मुनि के मुख की ओर देखा। मुनि की एक आंख पीड़ा से लाल होकर सूज रही थी, सुभद्रा देखकर समझ गई। एक फंटा मुनि की आंखों में लगा था। भक्ति के उद्रेक में सुभद्रा ने अपने आंचल के छोर से मुनि की आंख का तिनका निकाल दिया। मुनि चले गए और पवित्र हृदयवाली सुभद्रा भी आज के दिन को धन्य मानती हुई जैसे ही मुनि को वन्दना कर पीछे लौटी तो बस सास ने कुहराम मचा दिया। “कुलटा कहीं की! मुनि से भी नहीं चूकी। हाय! इसने तो मेरे कुल पर ही कालिख पोत दी।” बुद्धदास दौड़कर आया, पास-पड़ोस के लोग भी जमा हो गए। सुभद्रा स्तब्ध थी, यह क्या गजब हो गया? पवित्र एवं करुणार्द्र हृदय से मुनि की आंख का तिनका

निकाल देने पर कैसे आज मेरा कुल कलंकित हो गया?’’ वह बड़ी विकट स्थिति में थी। वह मौन, खड़ी-खड़ी देखती रही। मौका पाकर बुद्धदास ने भी मन का गुब्बार निकाला- “ कलंकिनी! कुलटे! उस साधु से प्रेम था तो घर के भीतर ले जाना था, या चली जाना था उसके पीछे! क्या यही तेरे जैन धर्म ने शिक्षा दी है? मैं तेरे रूप के जाल में फंस गया। इसीलिए आज मुँह काला करना पड़ा है।”

सुभद्रा भूमि में आँखें गड़ाए मौन खड़ी रही। चारों ओर से अपशब्द की वर्षा हो रही थी। कोई उसको, कोई उसके माँ-बाप को, कोई जैन धर्म को और कोई मुनियों को कोस रहा था। बुद्धदास बोला-पहले तो साधु से आँखें मिलाते शर्म नहीं आई! और अब मुँह नीचा किए खड़ी है, जबान पर ताला लगाएगी नहीं तो क्या बोलेंगी।

सहने की भी कुछ हद होती है। सुभद्रा अपनी और अपने माता-पिता की निन्दा सुनती रही, सहती रही, पर धर्म पर आक्षेप आने लगा तो उसका हृदय रो उठा। उसने दृढ़ता पूर्वक कहा- “पतिदेव! आप सब लोग ईर्ष्या से जल रहे हैं, इसीलिए तिल का ताड़ बना रहे हैं। मैंने तो शुद्धभाव से मुनि की आँख से तिनका निकाला है, मेरे मन में कोई भी बुरी भावना नहीं थी, मैं सर्वथा निर्दोष हूँ और मेरे गुरु बड़े पवित्र और महान तपस्वी थे। आप लोग उन पवित्र साधुओं पर और महान जैन धर्म पर कलंक लगा रहे हैं। सत्य आखिर सत्य है। समय आएगा, जब असत्य के ये बादल फटेंगे और सत्य का सूर्य चमक उठेगा।”

बुद्धदास आदि सुभद्रा की बात सुनकर खिसिया उठे- पाप करके अब निर्दोष बन रही है।

सुभद्रा अब मौन थी! अपने कमरे में जाकर वह प्रभु के ध्यान में लीन हो गई। विपत्ति और संकटों का मुकाबला करने की हिम्मत उसने अपने धर्म गुरुओं से पाई थी। वह निर्भय होकर दृढ़ संकल्प के साथ प्रतीक्षा करने लगी, जब तक मेरे सिर का कलंक दूर नहीं होगा तब तक मैं आहार पानी ग्रहण नहीं करूँगी।

इस घटना के दूसरे दिन प्रातः नगर में सहसा कोलाहल मच गया। चंपानगरी के चारों दरवाजे रात्रि में अपने आप बंद हो गए, न उन पर ताला है, न कोई सांकल! पर खोले खुल नहीं रहे हैं।

घन की चोटें लगाते-लगाते पहलवानों के हाथों में छाले पड़ गए, सेना के विस्फोटक अस्त्र-शस्त्र उन्हें हिला नहीं सके और मदमस्त हाथियों की टक्करों से भी दरवाजे चूँ तक नहीं कर सके। सब लोग भयभीत थे। राजा और समस्त अधिकारी चिन्तासागर में डूबे थे। नगर पर अचानक यह क्या दैविक आपत्ति आ गई? हजारों प्रयत्न करने पर भी दरवाजे टस से मस नहीं हुए। दरवाजों पर हजारों नर-नारियों की भीड़ लगी थी। चारों ओर भय! चिन्ता! उद्भ्रांति छाई हुई थी। तभी राजा को सम्बोधित करती हुई एक आकाशवाणी सुनाई दी-“राजन्! तुम्हारे सब प्रयत्न विफल हो जाएंगे। ये दरवाजे बल और छल से नहीं खुलेंगे, इन्हें तो कोई महासती का शील-बल ही खोल सकेगा। सुनो! इस चंपानगरी में यदि कोई ऐसी सती हो, कच्चे सूत से छलनी बांधकर कुएं में से पानी निकाले और उस पानी के छींटे इन दरवाजों पर डालें तभी ये दरवाजे खुल सकते हैं, अन्यथा नहीं।”

आकाशवाणी सुनकर राजा और प्रजा में खलबली मच गई! सच ही यह कोई दैविक प्रकोप है। राजा ने नगर में घोषणा करवाई- “जो सती कच्चे सूत से छलनी बांधकर कुएं से पानी निकालेगी और नगर-द्वार खोलेगी उस महासती का समूची प्रजा उपकार मानेगी और राजा उसे अपनी धर्म-बहन बनाएंगे।

घोषणा सुनकर नगर की हजारों कुलवधुएँ इस प्रयत्न में जुट गईं। किंतु कच्चे सूत से छलनी बांधकर पानी निकालना, छलनी बांधना तो असंभव सा था। दोपहर से संध्या हो गई, नगर के कुओं पर कुलनारियों का जमघट लगा था और कच्चे सूत एवं छलनियों के अंबार लगे थे, पर किसी का भी प्रत्यन सफल नहीं हो पा रहा था। संध्या होते-होते सुभद्रा ने भी उद्घोषणा सुनी। उसके मन में प्रेरणा जगी- “यह स्वर्ण अवसर आया है, जब मैं अपने शील धर्म का परिचय देकर नगर का संकट दूर करूँ और अपने धर्म पर लगे कलंक को मिटाऊँ।” सुभद्रा संकल्प करके उठी। सास के पास आई और प्रणाम करके बोली “माताजी! आप मुझे आशीष दीजिए! मैं अपने शील-धर्म के बल पर नगर की विपत्ति टालने का प्रयत्न करूँ।”

सास कड़वी हंसी हंसती हुई बोली- “तेरे जैसी सतियाँ ही तो इस नगर का बेड़ा पार लगाएंगी।

सुभद्रा ने धीरता के साथ कहा- “माताजी! आपके मन में झूठा भ्रम हो

गया है, मैं इसी को दूर करूंगी। मैं अपने व्रत में सच्ची हूँ, मेरा धर्म और देव-गुरु सच्चे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं नगर का संकट दूर करके आपके कुल की निर्मल कीर्ति में चार चांद लगाऊंगी। मुझे रोकिए मत, जाने दीजिए!”

“जा जा! बड़ी-बड़ी राजरानियां और सेठानियां तो अपना सा मुंह लेकर आ गई, तू भी जा अपने कुल का नाम डुबोकर आ जा! सास ने तिरस्कारपूर्वक सुभद्रा की ओर देखकर कहा।

सुभद्रा का हृदय दृढ़ विश्वास से हिलोरे ले रहा था। उसे अपने धर्म एवं नियम पर अडिग आस्था थी। सास को प्रणाम कर अरिहंत का नाम लेकर वह चल पड़ी।

भीड़ को चीरती हुई सुभद्रा कुएं पर पहुंची। पास-पड़ोस वाली अनेक कुलनारियाँ कनखियों से झांक कर सुभद्रा पर हंस रही थी- “यह आई है सती जैन मुनि के साथ दुराचार करने वाली नई महासती!”

सुभद्रा सब कुछ सुनती रही। कच्चा सूत लेकर चलनी को बांधा और मन में नवकार मंत्र का स्मरण किया, फिर हाथ जोड़कर संकल्प किया- “मैंने मन-वचन-कर्म से शुद्ध शील व्रत का पालन किया है तो यह छलनी पानी से भर कर बाहर आ जाओ!” बस, दृढ़ संकल्प के साथ सुभद्रा ने छलनी को कुएं में डाला और देखते ही देखते पानी से छलाछल भरी हुई छलनी बाहर आ गई। व्यंग्य और मजाक करने वाली नारियों के मुंह पर ताले लग गए। हजारों लोग आश्चर्यपूर्वक देख रहे थे। तभी राजा और मंत्री दौड़कर आए- “चलिए महासती! अपने शीलव्रत का चमत्कार दिखाइए, इस जल को नगर द्वार पर छिड़ककर नगरी का उद्धार कीजिए।”

आगे-आगे सुभद्रा थी। पीछे राजा, मंत्री और अपार नर-नारियों की उमड़ती भीड़! सुभद्रा पूर्व दिशा के द्वार पर पहुंची। नवकार मंत्र का स्मरण कर उच्च स्वर से बोली-“अरिहंत मेरे देव हैं, निर्ग्रथ मेरे गुरु हैं, उन द्वारा प्ररूपित सत्य-अहिंसा-संयम रूप मेरा धर्म है। मैं आज तक अखण्ड रूप से अपने धर्म, नियम एवं शील का पालन करती आई हूँ। यदि मैं अपने शील में सच्ची हूँ, तो जल के छींटे लगते ही नगर के द्वार खुल जाएँ”- इन्हीं शब्दों के साथ सुभद्रा ने दरवाजों पर जल छिड़का और खड़-खड़ाते हुए दरवाजे खुल पड़े। सती सुभद्रा के जय-जयकार से धरती और आकाश गूंज

उठे।

सुभद्रा ने नगर की तीन दिशाओं के द्वार पर पानी छिड़क कर उन्हें खोल दिया। किंतु एक द्वार यों ही छोड़ दिया। राजा ने उसे खोलने का आग्रह किया, तो सुभद्रा ने कहा- “महाराज! इस द्वार को बंद ही रहने दीजिए! भविष्य में यदि किसी सती पर विपत्ति आवे तो वह इस द्वार को खोलकर अपने शील धर्म का माहात्म्य प्रकट कर सकेगी और अपनी सच्चाई का परिचय दे पाएगी।

राजा ने सुभद्रा को धर्म बहन बना कर बहुत सम्मान दिया। स्वर्णाभूषणों से सज्जित कर राजकीय सम्मान के साथ उसे अपने घर भेजा और महासती की पदवी से विभूषित किया।

सुभद्रा का संकल्प पूर्ण हुआ। सत्य का सूर्य चमक उठा। चारों ओर सती सुभद्रा की जयध्वनियाँ गूंज रही थी। लोग चरणों में आकर क्षमा मांग रहे थे- “महासती! हमारा कोई भी अपराध हुआ हो तो क्षमा करना!” तभी बुद्धदास और उसकी माता आए। दोनों ही सुभद्रा के चरणों में गिरे तो सुभद्रा ने उनको रोककर स्वयं चरणों में झुक गई- “यह सब आपकी कृपा का ही फल है!”

सास और बुद्धदास की आंखों से आंसू बह रहे थे। “देवी ! तुम महान सती हो! हमने तुम्हें और तुम्हारे धर्म को ईर्ष्यावश कलंकित किया है, हमें माफ कर दो!

सुभद्रा ने परिवार सहित सैकड़ों लोगों को जैन धर्म की शिक्षा दी। जिसे सुनकर कई लोगों ने जिनधर्म को स्वीकार किया।



3. महावीर के प्रथम गणधर-‘इन्द्रभूति गौतम’

इन्द्रभूति भगवान महावीर के प्रथम शिष्य तो नहीं पर प्रथम सुशिष्य थे। प्रथम सुशिष्य इसलिए कि गौतम से पूर्व गौशालक प्रभु का शिष्य बना था पर वह कुशिष्य के रूप में प्रसिद्ध हुआ। भगवान का ही अपकार करने वाला हुआ।

इन्द्रभूति जब प्रभु के सम्मुख आए थे उस समय दीक्षा के भाव से नहीं आए थे। वे तो आए थे प्रभु के लिए मन में शत्रुभाव लेकर, करना चाहते थे शास्त्रार्थ, देखना चाहते थे प्रभु को अपने सम्मुख परास्त होते, पर हो गया बिलकुल विपरीत अर्थात् प्रभु के अतिशय से प्रभावित गौतम अपने शिष्य समुदाय सहित प्रभु के पावन चरणों में वहीं समर्पित हो गए।

अद्भूत, अलौकिक, विराट व्यक्तित्व वाले महापुरुष इन्द्रभूति 'गौतम' के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिचय देना जिह्वा या शब्दों के वश की बात नहीं है। गौतम गौत्रिय ब्राह्मण-कुल में जन्म के कारण ये 'गौतम' कहलाए। ये वेद-विद्या के एक प्रख्यात पारंगत विद्वान-आचार्य थे। पाँच सौ वेदपाठी पंडित-पुत्र ब्राह्मण उनसे वेदों का गूढ़ ज्ञान प्राप्त करने हेतु उनके पास नियमित अध्ययन करते थे।

यज्ञ का आयोजन - जिन दिनों श्रमण भगवान महावीर को कैवल्य की प्राप्ति हुई, उन्हीं दिनों अपापा नगर के निवासी सोमिल नामक एक धनाढ्य ब्राह्मण ने अपने यहाँ एक बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया। उस समय तक कर्मकांड एवं यज्ञादि अनुष्ठान में अतिनिष्णात एवं वेद-विद्या में पारंगत होने के कारण इन्द्रभूति की यशोगाथा दशों दिशाओं में फैल चुकी थी। वादि के वाद-मान-मर्दन में सब ब्राह्मण समुदाय में उनके तुल्य कोई अन्य नहीं था।

सोमिल ने अपने यज्ञ के अनुष्ठान हेतु ऐसे महान् पंडित इन्द्रभूति को बुलाया और साथ ही अग्निभूति, वायुभूति (दोनों इन्द्रभूति के भ्राता) व्यक्त, सुधर्मा, मंडित, मौर्यपुत्र, अकंपित, अचलभ्रात, मेलार्य एवं प्रभास नाम के दस अन्य महादिग्गज पंडितों को भी यज्ञ में बुलाया गया। सुविशाल यज्ञ के आयोजन से अपार जन-समूह अपापा नगर की ओर उमड़ पड़ा।

इन्द्रादि के विमानों का आगमन- इन्द्रभूति के निर्देशन में यज्ञ प्रारम्भ हुआ। सहसा आकाशमंडल में सहस्रों सूर्यों का प्रकाश एक साथ भर गया। यज्ञ-मंडप में उपस्थित सभी जन गगनमंडल की ओर निहारने लगे। गगन देवों के देदीप्यमान विमानों से जगमगा गया था। सभी लोग सोमिल के भाग्य और गौतम के अनुष्ठान की प्रशंसा करने लगे- "कैसा विद्वान पंडित है? कितनी शक्ति है इसके मंत्रोच्चारण एवं अनुष्ठानिक क्रियाओं में! देवलोक के इन्द्रादि सभी देवों को साक्षात् यज्ञ में आना पड़ा। आज तक जो नहीं

देखा, वह आज देख लिया।

प्रशंसा अहंकार को जगाती है। गौतम ने भी जन-जन के मुखोच्चारित प्रशंसा-शब्दों को सुना। सोचा- “यह हुआ मेरे ज्ञान, मेरी विद्वत्ता, मेरे पांडित्य का साक्षात् चमत्कार। मैं जानता था, मैं सर्वज्ञ हूँ, अब सभी जान गए। सबको मानना पड़ेगा कि मेरे जैसा ज्ञानी दूसरा कोई नहीं है।”

वह सोमिल से बोला - “हमने तुम्हारे यज्ञ का अनुष्ठान कर तुम्हारे भाग्य को जगा दिया है। हमारे ज्ञानबल से देवतादि भी तुम्हारे यज्ञ में अपना भाग ग्रहण करने साक्षात् सशरीर आ रहे हैं।”

विमान निकट, निकटतर, निकटतम आए और अगले ही कुछ क्षणों में फरटते भरते हुए यज्ञ-स्थल के ऊपर होते हुए आगे चले गए। सबने देखा यह, सभी के स्वर मंद पड़ गए, मंत्रोच्चार में अब वह उत्साह तेज नहीं रह गया। सभी हताश और निराश हो गए।

देव विमान कहीं और! भ्रांति मिटी तो अचरज बढ़ा- कुछ ही क्षणों पश्चात् देव-विमान किसी निकटस्थ स्थान पर उतरते दिखाई पड़े। इन्द्रभूति अचरज में पड़ गए। देव-विमान यज्ञ स्थल पर क्यों नहीं उतरे? आगे क्यों चले गए? क्या वे मार्ग भूल गए? पर गए तो इधर से ही थे। क्या उनकी स्मरण शक्ति चूक गई है?

इन्द्रभूति को आश्चर्य तो था ही अब आवेश भी आ गया। उसने अपने विद्यार्थी शिष्यों को कहा- “तुममें से कुछ छात्र जाओ और छानबीन कर बताओ कि बात क्या है?”

जो देखा, अविस्मरणीय देखा- शिक्षार्थी वहाँ गए तो वहाँ जो कुछ आश्चर्यजनक देखा उसे अपने गुरुदेव इन्द्रभूति को सुनाते हुए बोले - “वहाँ सर्वज्ञ श्रमण भगवान महावीर पधारे हुए हैं। उन्हें केवल्यज्ञान की प्राप्ति हुई है। देवों द्वारा उन्हीं के समवसरण की रचना की गई है। समस्त देवगण वहाँ पधारे हैं।”

कौन है यह महावीर? - यह सुनकर इन्द्रभूति का तेज अचानक मंद पड़ गया। अन्दर का अहंकार भी कुछ नीचे उतर गया, पर आवेशभाव क्रोध में बदलने लगा। मन में सोचा- “सर्वज्ञ तो मैं हूँ, यह सर्वज्ञ कहाँ से आ गया? लगता है कोई बहुत बड़ा मायावी, ऐन्द्रजालिक (इन्द्रजालिया) है जिसने देवों तक को छल लिया है। मैं अभी जाकर देवों के भ्रम को दूर

करता हूँ। ऐसे-ऐसे जटिल प्रश्नों की झड़ी लगाता हूँ कि उसकी सर्वज्ञता का आवरण छत्र से टूटकर बिखर जाएगा।

चले इन्द्रभूति, प्रभु महावीर के समवसरण की ओर। अपने पांडित्य के अनुरूप पीतवस्त्र, यज्ञोपवीत आदि उन्होंने धारण कर रखे थे। पाँच सौ शिष्यों का समुदाय उनके पीछे था। उनका कमंडल किसी एक शिष्य के हाथ में था तो एक अन्य शिष्य छत्र लिए हुए उनके साथ चल रहा था। वे सभी शिष्य इन्द्रभूति की जयकार करते हुए चल रहे थे।

ये महावीर ही अंतिम तीर्थंकर हैं!- चलते हुए जब वे समवसरण के निकट पहुँचे तो दंग रह गए। अष्ट महाप्रतिहार्य और अलौकिक ऐश्वर्य, महावीर और इस समवसरण ने उस पंडित को एक पल के लिये मूढ़ बना दिया। वे सीढ़ियों के निकट ही अचल खड़े हो अपलक प्रभु को निहारने लगे। सोचा- 'यह मैं कहाँ आ गया? यह महावीर हैं या ब्रह्मा? पर ब्रह्मा तो वृद्ध हैं तो क्या विष्णु हैं? पर विष्णु तो श्याम रंग के हैं और ये तप्त स्वर्ण जैसे स्वर्णिम रंग के। महेश्वर ये हो नहीं सकते क्योंकि वे तो संहारक हैं और इनका चेहरा तो अमृत रस का झरना है। सूर्य के समान तेजस्वी हैं पर सूर्य नहीं हैं क्योंकि सूर्य तो जला देता है और ये तो शांत हैं। चन्द्र भी ये नहीं क्योंकि चन्द्र तो सकलंक है और ये निष्कलंक हैं। कामदेव अशरीरी हैं अतः कामदेव भी ये हो नहीं सकते, तो क्या ये ही सर्वगुण सम्पन्न और सभी दोषों से रहित अंतिम तीर्थंकर हैं? निश्चित ही ऐसा ही है तो फिर मेरा यहाँ आना निष्फल हो जाएगा। अब बिना कुछ बोले वापस जाता हूँ तो मेरा तो सारा अर्जित-यश मिट्टी में मिल जाएगा। लोग मुझे 'पलायन करने वाला' कहेंगे। बड़ी भूल कर दी मैंने यहाँ आकर। लौटकर जा नहीं सकता और इन्हें परास्त कर नहीं सकता। अब तो कोई चमत्कार ही मेरे यश, मेरे मान-सम्मान की रक्षा कर सकता है।'

सागयं सु आगतं- इधर गौतम की यह विचारधारा चल ही रही थी कि तभी प्रभु ने कहा- 'इन्द्रभूति गौतम! "सागयं सु आगतं"। अर्थात् इन्द्रभूति गौतम! 'स्व-पर' कल्याणकारी होने से तुम्हारा आगमन अच्छा है लाभकारी है। प्रभु तो सर्वज्ञ थे, जानते थे कि ये दीक्षा लेकर अपनी आत्मा के साथ ही जन-जन के लिए कल्याण का पथ भी प्रशस्त करेंगे।

इन्द्रभूति ने सोचा- 'आश्चर्य है! ये मेरा नाम भी जानते हैं।' पर कुछ

ही पलों बाद विचार आया- 'मेरे नाम को कौन नहीं जानता। मेरे पांडित्य के कारण सारी दुनिया मुझे जानती है।' उनके अन्दर के अहंभाव ने पुनः सिर उठा लिया था। यह भी मोहकर्म के उदय का प्रताप है।

मन की शंका का समाधान- तभी प्रभु बोले- "गौतम! क्या तुम्हारे मन में यह शंका है कि आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? जब वह घट-पट आदि की तरह प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता तो उसका अस्तित्व नहीं है, ऐसा ही मानना चाहिए। क्या यही बात तुम्हारे मन में है?"

गौतम भाव-विभोर हो गए। "अरे कितना समय हो गया था इस पर चिन्तन करते-करते पर आज तक मैंने मन में उठ रही इस शंका को प्रकट नहीं किया था, किसी को बताया नहीं था, फिर भी प्रभु ने उसे जान लिया।" गौतम मान गए कि महावीर निश्चय ही सर्वज्ञ हैं।

मैं की अनुभूति ही आत्मा है- प्रभु इस पर बोले- "इन्द्रभूते! तुम्हारे अंतर में जीव के अस्तित्व और अनास्तित्व की जो ऊहापोह है, उसी से सिद्ध होता है कि जीव है। तुम्हारे मन में यह जो संशय उठा उसका मूल कारण यह है कि तुमने वेद की ऋचाओं के वास्तविक अर्थ को हृदयंगम नहीं किया। वहाँ आया है-

न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसंतप्रियाप्रिये न स्पृशतः।'

-छान्दोग्योपनिषद्, 445

जहाँ से शंका उत्पन्न हुई वह कौन है? वही तो आत्मा है। तुम जब कहते हो- मैं आया, मैं गया, मैं प्रसन्न हूँ, मैं यह करना चाहता हूँ, तो इन सब में, यह 'मैं' कौन है? 'अहं ब्रह्मोस्मि! यही जो 'मैं' की अनुभूति है। वही मैं हूँ, वही आत्मा है।

गौतम प्रभु चरणों में समर्पित- शंका का समाधान हो गया। आए थे इन्द्रभूति वहाँ प्रभु को परास्त करने पर स्वयं को समर्पित कर बैठे प्रभु के चरणों में। आए थे शत्रुभाव लेकर, पर नतमस्तक हो गए। मिथ्यात्व की कारा को तोड़कर सम्यग्दर्शन के सुखासन पर आसीन हो गये। तन और मन से पंचांग नमाकर बोले- "प्रभु! आप सर्वज्ञ हैं, आपने मेरे मन की गहराई में छिपी शंकाओं का समाधान कर मेरे मन को संतुष्टि प्रदान की है। भगवन्! मैं अब इन पावन चरणों की शरण को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी जाना नहीं

चाहता। आपने मेरे अन्तर के ज्ञान-चक्षुओं को पूर्णतः खोल दिया है अतः मेरा यह जीवन आपको समर्पित है। मैं आप ही की तरह का साधक जीवन आपके सान्निध्य में बिताना चाहता हूँ।”

अहासुहं देवाणुष्पिए- “हे गौतम ! तुम्हें जैसा सुख उपजे वैसा करो, धर्मकार्य में क्षण मात्र का भी विलम्ब मत करो।”

पाँच सौ शिष्य भी प्रभु-चरणों में समर्पित- गौतम के साथ थे उनके पाँच सौ विद्यार्थी-शिष्य। वे अपने शिष्यों की ओर उन्मुख होकर बोले- “मुझे तो आज मेरे सच्चे गुरुवर की प्राप्ति हो गई है। आज से मेरा समस्त जीवन इन्हीं की चरण-शरण में अर्पित रहेगा। आप सभी एक लम्बे समय तक मेरे पास रहकर वेद-वेदांत का अध्ययन करते रहे। आज से आप लोग किसी अन्य के पास जाकर विद्याध्ययन करना चाहें तो जा सकते हैं, जिसकी जैसी भावना हो वह वैसा करे।”

शिष्य भी गुरु की तरह समर्पित भाव रखने वाले थे। बोले- “गुरुवर! जो आपके गुरु, आज से वही हमारे भी गुरु। आपकी इस साधना-यात्रा में हम भी आपके साथ ही रहेंगे, आपकी सेवा-शुश्रूषा करते हुए महावीर के इसी साधना पथ पर चलेंगे।”

इन्द्रभूति गौतम अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ प्रभु चरणों में समर्पित हो गये, उन्होंने जगत् के जीवों के कल्याण हेतु प्रभु से अनेकों प्रश्नों का समाधान किया, वे आज भी आंशिक रूप से उपलब्ध हैं। वे गणधर बने और प्रभु निर्वाण के पश्चात केवलज्ञान को प्राप्त कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए।



काव्य विभाग

लघु साधु वन्दना

साधु जी ने वंदना नित नित कीजे प्रातः उगंते सूर रे प्राणी।
नीच गति मां ते नहीं जावे, पावे ऋद्धि भरपूर रे प्राणी । साधु॥1॥
मोटा ते पंच महाव्रत पाले, छह काया रा प्रतिपाल रे प्राणी।
भ्रमर भिक्षा मुनि सूझती लेवे, दोष बियालीस टाल रे प्राणी। साधु॥2॥
ऋद्धि सम्पदा मुनि कारमी जाणी, दीधी संसार ने पूठ रे प्राणी।
एवा पुरुषां री सेवा करता, आठ करम जाय टूट रे प्राणी। साधु॥3॥
एक एक मुनिवर रसना त्यागी, एक एक ज्ञान भण्डार रे प्राणी।
एक एक मुनिवर वैयावच्च वैरागी, जेना गुणानो नावे पार रे प्राणी। साधु॥4॥
गुण सत्तावीस करीने दीपे, जीत्या परीसह बावीस रे प्राणी।
बावन तो अनाचार जो टाले, तेने नमावुं म्हारो शीश रे प्राणी। साधु॥5॥
जहाज समान ते संत मुनीश्वर, भव्य जीव बैठे आय रे प्राणी।
पर उपकारी मुनि दाम न मांगे देवे मुक्ति पहुंचाय रे प्राणी। साधु॥6॥
इण चरणे जीव साता पावे, पावे ते लीलविलास रे प्राणी।
जन्म जरा ने मरण मिटावे, नावे फेरी गर्भावास रे प्राणी। साधु॥7॥
एक वचन श्री सतगुरु केरो, जो पैठे दिल मांय रे प्राणी।
नरक निगोद म ते नहीं जावे, एम कहे जिनराय रे प्राणी। साधु॥8॥
प्रातः उठी ने उत्तम प्राणी, सुणे साधुजी रो व्याख्यान रे प्राणी।
एहवा पुरुषां री सेवा करता, पावे अमर विमान रे प्राणी। साधु॥9॥
संवत अठार ने वर्ष अड़तीसे, बूसी गाँव चौमास रे प्राणी।
मुनि आसकरणजी इण पर जपे, हूं तो उत्तम साध रो दास रे प्राणी। साधु॥10॥



मन मंदिर

तर्ज-खड़ी नीम के नीचे...

मन मंदिर को स्वच्छ बनाकर, ध्यान धरो भगवान का,
भक्ति की सौरभ महकाकर, दीप जलाओ ज्ञान का।टेरे।

राग द्वेष का बीज जलाकर, जन्म मरण मिटा दिया,
आत्मा का सब कल्मष धोकर, भव अज्ञान हटा दिया,
उस चिन्मय का ध्यान धरे, हम पाएँ पथ कल्याण का।।1।।

सत्य शील संतोष सरलता, सत् संगति के फूल से,
प्रभु की भक्ति कर लो भाई, अपना आपा भूल के,
तू मैं का यह भेद मिटाकर, स्वाद जरा ले ध्यान का।।2।।

क्रोध, मान, माया, ममता की, भरी हृदय में गन्दगी,
दुर्व्यसनों की दुर्गन्धि से, बिगड़ी तेरी जिन्दगी,
स्वच्छ बना ले इसको अब तू, मौका है उत्थान का।।3।।

जैसी जिनकी रही भावना, वैसा ही फल पाता है,
दृष्टि समसृष्टि में देखो, रूप वही मिल जाता है,
सत् चिंतन है पथ प्रभुवर का, दुश्चिन्तन शैतान का।।4।।

मत भक्ति का ढोंग रचाओ, अगर हृदय में खोट है,
नहीं चलेगा कहीं जगत में, तेरा नकली नोट है,
छत्र खुलेगा समभावों से, द्वार सुखद निर्वाण का।।5।।



शान्ति मन्त्र

महामन्त्र है यह जपेंगे जपेंगे
सदानन्द शान्तिः सदानन्द शान्तिः॥धु॥

जो सोमल ने डाले धधकते अंगारे।
सहे कृष्ण बान्धव ने किसके सहारे?
यही मन्त्र नस-नस में उसके भरा था-
सदानन्द शान्तिः सदानन्द शान्तिः॥1॥

सुदर्शन पे दौड़ा था अर्जुन माली।
कहो कैसे उसका गया वार खाली?
यही मन्त्र जीवन में उसके समाया-
सदानन्द शान्तिः सदानन्द शान्तिः॥2॥

सुना पाँच सौ थे जो खन्दक के चले।
गये कैसे कोल्हू में वे हाय पेले॥
यही मन्त्र रग-रग में उनके रमा था-
सदानन्द शान्तिः सदानन्द शान्तिः॥3॥

सुना सन्त स्कन्दक की चमड़ी उतारी।
कहो कैसे मन में परम शान्ति धारी॥
इसी मन्त्र का अर्थ उसने विचारा-
सदानन्द शान्तिः सदानन्द शान्तिः॥4॥

सुना मेघरथ ने कबूतर के कारण।
दिया माँस अपना किया दुःख निवारण॥
इसी मन्त्र से तो बना शान्ति स्वामी-
सदानन्द शान्तिः सदानन्द शान्तिः॥5॥

दिया नागश्री ने कटुक शाक जिसको।
उसी धर्मरुचि ने पिया कैसे विष को?

यही मन्त्र तो मन में उसके बसा था-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः॥६॥

सुना है कुंवर मेघ हाथी के भव में।
खड़ा तीन पग से क्यों जंगल के दव में?
इसी मन्त्र से था वो पशु भी प्रभावित-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः॥७॥

जो मैतार्य के सिर पे चमड़ा लपेटा।
लगी धूप सिकुड़ा सकल दुःख मेटा॥
इसी मन्त्र का ध्यान उसने लगाया -
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः॥८॥

जो अर्हन्नकादिक अनेकों उपासक।
रहे कैसे संकट में आत्मानुशासक?
अचल दिल में यह मन्त्र सब के जमा था-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः॥९॥

जो सीता शिवा अंजना आदि माता।
कहो कैसे सह ली भयंकर असाता?
तपस्या का अवलम्बन यह मन्त्र ही था-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः॥१०॥

असुर मेघमाली के उपसर्ग भारी।
रहे कैसे पारस प्रभु ध्यान धारी?
इसी मन्त्र का आपको भी सहारा-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः॥११॥

महावीर को देव संगम ने ऐसे।
दिये कष्ट कितने सहे हाय! कैसे?
यही मन्त्र जपते थे शासन के स्वामी-
सदानन्द शांतिः सदानन्द शांतिः॥१२॥

सामान्य ज्ञान विभाग

ज्ञान-फुलवारी

1. तृष्णाजयी बन तिरा कौन? कपिल केवली
2. मान कर मुण्डित कौन हुआ? दशार्णभद्र राजा
3. क्रोध से दुर्गति किसने पायी? चण्डकौशिक का जीव
4. विषय वशवती बन मृत्यु किसने पाई? मणिरथ राजा
5. माया करके मंजिल से कौन गिरा? आषाढभूति मुनि
6. तप करके भटका कौन? कुंडरिक मुनि
7. दान देकर संसार किसने बढ़ाया? नागश्री ब्राह्मणी
8. ममता से मोक्ष किसका रुका? स्कन्धक आचार्य
9. शील सुशोभित कौन हुआ? सुदर्शन श्रावक
10. सुपात्रदान को निष्फल किसने किया? पूरण सेठ
11. रूप देख रंज किसने किया? सनत्कुमार चक्रवर्ती के रूप पर ब्राह्मण रूप देवता ने
12. प्रभु वाणी से निर्मल कौन हुआ? रोहिण्य चोर
13. सोये को किसने जगाया? ब्राह्मी सुंदरी
14. अबोध से बोध किसने पाया? करकंडु
15. निशस्त्र युद्ध किसने किया? प्रसन्नचंद्र राजर्षि
16. व्यथा में स्वरूप किसने जाना? रत्नेश मुनि (अनाथी मुनि)
17. रागी को त्यागी किसने बनाया? स्थूलीभद्र ने कोसा वेश्या को
18. तिरस्कार से सत्कार किसने पाया? सती सुभद्रा
19. उपकार के बदले अपकार किसने किया? गोशालक
20. पुण्य से पाप किसने कमाया? नंदमणियार
21. जहर को अमृत बना, ईश्वर कौन बने? प्रभु महावीर
22. जोगी बन, जान किसने गंवायी? रावण
23. गुफाओं में ज्ञान किसने पाया? मानतुंगाचार्य
24. भूले को सत्पथ किसने दर्शाया? सती राजमती

कालचक्र : एक अनुशीलन

मनुष्य लोक प्रसिद्ध दिन-रात, पक्ष-मास आदि स्थूल काल-विभाग सूर्य चंद्रादि ज्योतिष्कों की गति पर आधारित है। स्थान विशेष में सूर्य के प्रथम दर्शन से लेकर उस स्थान विशेष में सूर्य का जो अदर्शन होता है, उस उदय-अस्त के बीच सूर्य की गतिक्रिया से ही दिन का व्यवहार होता है।

इस प्रकार सूर्य के उदय अस्त की गतिक्रिया से दिवस रात्रि का व्यवहार होता है। दिन और रात का तीसवाँ भाग मुहूर्त कहलाता है। पन्द्रह दिन-रात का पक्ष होता है। दो पक्ष का मास होता है। दो मास की ऋतु होती है। तीन ऋतुओं का अयन होता है, दो अयन का वर्ष, पाँच वर्ष का युग होता है। इस प्रकार का लौकिक काल विभाग सूर्य की गतिक्रिया से किया जाता है। जो क्रिया चालू है वह वर्तमान काल, जो होने वाली है वह अनागत काल और जो हो चुकी है वह अतीत काल है। जो काल गणना में आ सकता है वह संख्येय है, जो गणना में न आकर केवल उपमान से जाना जाता है वह असंख्येय है, जैसे पल्योपम, सागरोपम आदि। जिसका अंत नहीं है, वह अनन्त है।

समय, आवलिका आदि काल के सूक्ष्म विभाग हैं। काल का सबसे छोटा अंश जिसका फिर अंश न हो सके वह समय कहा जाता है। असंख्यात समयों की एक आवलिका होती है। एक करोड़, सड़सठ लाख, सितत्तर हजार दो सौ सोलह (1, 67, 77, 216) आवलिकाओं का एक मुहूर्त होता है। एक मुहूर्त में दो घटिकाएं होती हैं। 24 मिनट की एक घड़ी और 48 मिनट का एक मुहूर्त होता है। दो समय से लेकर एक समय कम मुहूर्त काल को अंतर्मुहूर्त कहते हैं।

काल चक्र और उसका प्रभाव

लोक-स्थिति के प्रभाव से भरत और ऐरवत क्षेत्र में काल का अलग-अलग प्रभाव होता है। मुख्य रूप से काल के दो विभाग हैं- (1) अवसर्पिणी काल और (2) उत्सर्पिणी काल।

1. **अवसर्पिणी काल**- जिस काल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः हीन होते जाएं, आयु और अवगाहना घटती जाए तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम का हास होता जाए उसे अवसर्पिणी काल

कहते हैं। इस काल में पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श हीन होते जाते हैं और अशुभ भाव बढ़ते जाते हैं।

2. **उत्सर्पिणी काल**- जिस काल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः अधिकाधिक शुभ होते जाएं, आयु और अवगाहना बढ़ती जाए तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम की वृद्धि होती जाय वह उत्सर्पिणी काल कहलाता है। जीवों की तरह पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी इस काल में क्रमशः शुभ होते जाते हैं। अवसर्पिणी काल की समाप्ति पर उत्सर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल की समाप्ति पर अवसर्पिणी काल आता है। अनादि काल से यह क्रम चलता आ रहा है और अनन्त अनागत काल तक यही क्रम चलता रहेगा।

छः आरों का वर्णन

उत्सर्पिणी काल दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का है और अवसर्पिणी काल भी दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का है। दोनों मिलकर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक काल चक्र होता है। काल चक्र के कुल बारह आरे हैं। प्रत्येक काल के छह आरे हैं। अवसर्पिणी काल के छह आरों का विवरण यहाँ दिया जा रहा है-

अवसर्पिणी काल

पहला आरा : सुखमा-सुखम

चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम का 'सुखमा-सुखम' (एकान्त सुख) नाम का पहला आरा होता है। इस आरे में मनुष्य का शरीर तीन कोस का, आयु तीन पल्योपम की होती है। उतरते आरे में दो कोस का शरीर, दो पल्योपम का आयुष्य होता है। मनुष्य के शरीर में 256 पृष्ठ करंड (पासली व हड्डी) और उतरते आरे के वक्त 128 पसलियां होती हैं। वज्रऋषभ नाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान होता है। दम्पति खूबसूरत, सरल स्वभावी, उत्तम लक्षण से युक्त होते हैं। तीन दिन के अंतर से आहार की इच्छा होती है। प्रकृति प्रदत्त कल्प वृक्षों के द्वारा ही जीवन निर्वाह होता है। वे अपने शरीर परिमाण में कल्पवृक्ष के फल आदि का आहार करते हैं (पहले आरे में तुअर के दाने के बराबर आहार करते हैं। दूसरे आरे में बेर के बराबर, तीसरे में आवले के बराबर आहार करते हैं। ऐसा ग्रन्थकार बताते हैं। मनोवांछित

पदार्थों की पूर्ति करने वाले वृक्ष को 'कल्पवृक्ष' कहते हैं।

उनके दस भेद हैं :-

- (1) मतंगा - शरीर के लिए पौष्टिक रस देने वाले।
- (2) भृतंगा - पात्र आदि देने वाले।
- (3) त्रुटितांगा - वाद्यंत्र देने वाले।
- (4) दीपांगा - दीपक का काम देने वाले।
- (5) ज्योतिरिंगा - सूर्य के समान प्रकाश देने वाले। अग्नि को भी ज्योति कहते हैं। अतः अग्नि का भी काम देने वाले।
- (6) चित्रांगा - विविध विभिन्न प्रकार के फूल देने वाले।
- (7) चित्ररसा - विविध विभिन्न प्रकार का भोजन देने वाले।
- (8) मण्यंगा - आभूषण देने वाले।
- (9) गेहागार - मकान के आकार में परिणत होने वाले (42 मंजिल के) आवास-मकान रूप कल्पवृक्ष भी होते हैं।
- (10) अणियणा - वस्त्रादि देने वाले।

मिट्टी का स्वाद गुड़, खांड, शक्कर से भी मीठा होता है।

(1) प्रथम आरे के स्त्री-पुरुष का आयुष्य छः महीने शेष रह जाता है, उस समय परभव का आयुष्य बांधते हैं और षड्मास आयु शेष रहने पर ही युगलिनी एक पुत्र-पुत्री के जोड़े को जन्म देती हैं। उनपचास दिन तक उनका लालन-पालन करने के बाद वे समझदार और स्वावलंबी हो जाते हैं फिर वे सुखोपभोगानुभव करते हुए विचरते हैं। इनके माता-पिता क्रम से छींक और उबासी आने से मरकर देवगति में जाते हैं। क्षेत्र अधिष्ठित देव उन युगल के मृतक शरीर को क्षीर-समुद्र में प्रक्षेप कर मृत्यु संस्कार करते हैं। इस आरे में वैर, शोक, ईर्ष्या, जरा रोग आदि कुछ भी नहीं होता। ये सुख इन्हें पूर्व भव के दान, पुण्यादि सत्कर्मों के परिणाम स्वरूप प्राप्त होते हैं।

दूसरा आरा : सुखम

प्रथम आरे की मर्यादा समाप्ति होते ही तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम का सुखम नामक दूसरा आरा आरम्भ होता है। इस समय पहले से वर्ण, गंध,

खेचर तिर्यच भी युगलिक होते हैं। इन तीनों आरों में युगलिकों का केवल युगल धर्म रहता है।

तीसरे आरे के तीन विभागों में से दो विभागों में उक्त रचना रहती हैं। इस आरे के छयासठ लाख करोड़, छयासठ हजार करोड़, छयासठ करोड़, छयासठ लाख, छयासठ हजार, छयासठ सौ, छयासठ (66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66) सागरोपम बीत जाने पर काल स्वभाव से कल्पवृक्षों से पूरी वस्तुएं प्राप्त नहीं होती। इसलिए युगलिक पुरुषों में परस्पर झगड़ा होने लगता है। इस विवाद को मिटाने के लिए तथा व्यवस्था बनाए रखने के लिए 15 कुलकरों की उत्पत्ति होती है। ये कुलकर अपने-अपने समय के प्रभावशाली बुद्धिमान पुरुष होते हैं। ये तत्कालीन समाज के व्यवस्थापक और मर्यादा पुरुष होते हैं।

प्रारंभ के पाँच कुलकरों के समय तक 'हकार' की दण्ड नीति प्रचलित होती है। अर्थात् जब कोई व्यक्ति किसी प्रकार का अशोभनीय कार्य करता है, तो उसे कुलकर 'हा' ऐसा शब्द कहते हैं। इसका अर्थ होता है कि 'हा' यह तुमने क्या किया वे उसके कार्य पर खेद प्रकट करते हैं। अपराधी के लिए यही दण्ड पर्याप्त होता है। वह स्वयं को लज्जित अनुभव करता है।

इससे आगे पाँच कुलकरों तक 'मकार' की दण्ड नीति चलती है अर्थात् अपराधी को 'मा' शब्द कह दिया जाता है। जिसका अभिप्राय है कि 'ऐसा मत करो' इस प्रकार कह देना ही अपराध का दण्ड हो जाता है। इससे आगे के पाँच कुलकरों के समय में दण्ड नीति में कुछ कठोरता आ जाती है। उस समय अपराधी को 'धिक' इस कार्य के लिए तुम्हें धिक्कार है शब्द कहकर दण्डित किया जाता है। इन दण्डों से लज्जित होकर उस समय के लोग अपराध से विरक्त हो जाते हैं।

यद्यपि कल्पवृक्षों की फलदायिनी शक्ति क्रमशः क्षीण होती जाती है, तदपि इस समय तक कल्पवृक्षों से ही निर्वाह होता रहता है। लोगों को अपने निर्वाह के लिए असि, मसि, कृषि सम्बन्धी आजीविका की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः पहले से लगाकर तीसरे आरे के इस समय तक यह भूमि 'अकर्मभूमि कहलाती है। यहाँ मनुष्य की उत्पत्ति जोड़े से ही होती है, जोड़े से ही रहते हैं तथा इनकी स्थिति करोड़ पूर्व से अधिक होती है, इसलिए ये 'युगलिक' कहलाते हैं।

तीसरा आरा समाप्त होने में चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष और साढ़े आठ महिने शेष रह जाते हैं, तब अयोध्या नगरी में पंद्रहवें कुलकर से चैत्र कृष्णा अष्टमी को प्रथम तीर्थकर का जन्म होता है। काल के प्रभाव से जब कल्पवृक्षों से कुछ भी प्राप्त नहीं होता, तब मनुष्य क्षुधा से व्याकुल होते हैं। मनुष्यों की यह दशा देखकर और दयाभाव लाकर तीर्थकर भगवान उनके प्राणों की रक्षा के लिए वहाँ स्वभावतः उगे हुए चौबीस प्रकार के धान्य और मेवा आदि खाने को बताते हैं। कच्चा धान्य खाने से उनका पेट दुःखता है। ऐसा जानकर अरणि काष्ठ से अग्नि उत्पन्न करके उसमें धान्य पकाने को कहते हैं। भोले लोग अग्नि प्रज्वलित करके उसमें धान्य डाल देते हैं। अग्नि उसे भस्म कर देती है, उन्हें निराशा होती है और वे तीर्थकर के पास जाते हैं। तब कुम्भकार की स्थापना करके बर्तन बनाना सिखाते हैं। चार कुल, 18 श्रेणियाँ (जातियाँ), 18 प्रश्रेणियाँ स्थापित करते हैं। पुरुषों की 72 कलाएँ, स्त्रियों की 64 कलाएँ, 18 लिपियाँ, 14 विद्याएँ सिखलाते हैं।

जीताचार के अनुसार स्वर्ग से इंद्र आकर तीर्थकर का राज्याभिषेक करते हैं। लग्नोत्सव पाणिग्रहण करवाते हैं। ज्यों-ज्यों कुटुम्ब की वृद्धि होती है, त्यों-त्यों ग्राम, नगर आदि बसाये जाते हैं। इस प्रकार भरत क्षेत्र में आबादी बढ़ जाती है। युगलिक धर्म मिटाकर असि, मसि, कृषि, कलाएँ, विद्याएँ आदि तीर्थकर सिखाते हैं। इस आरे में 'ऋषभ प्रभु' प्रथम तीर्थकर हुए हैं। बीस लाख पूर्व तक वे कुमार अवस्था में रहे। 63 लाख पूर्व तक शासन किया। तदनन्तर अपने पुत्र भरत को राज्यभार सौंपकर चार हजार पुरुषों के साथ दीक्षा धारण की। संयम लेने के एक हजार वर्ष के बाद उनको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवल ज्ञानोत्पत्ति के बाद तीर्थ की स्थापना करते हैं। इस प्रकार प्रथम तीर्थकर भगवान जगत् के लौकिक और लोकोत्तर कल्याण का मार्ग बताकर एक लाख पूर्व तक संयम पालकर अष्टापद पर्वत पर पद्मासन से स्थित होकर, दस हजार साधुओं के परिवार से निर्वाण को प्राप्त हुए।

प्रथम तीर्थकर के समय राजकुल में प्रथम चक्रवर्ती का भी जन्म होता है। तीर्थकर के समान चक्रवर्ती की माता भी 14 स्वप्न धूमिल देखती है। भरत चक्रवर्ती का देहमान 500 धनुष का और आयुष्य 84 लाख पूर्व का होता है। वे चालीस लाख अष्टापदों के बल के धारक होते हैं और फिर भरत क्षेत्र के छह खण्डों पर एक छत्र शासन करते हैं।

चौथा आरा : दुःखम-सुखम

तीसरे आरे की समाप्ति पर दुःखम-सुखम नामक चौथा आरा प्रारंभ होता है। इसमें दुःख की प्रचुरता, सुख की न्यूनता होती है। बयालिस हजार वर्ष कम एक क्रोड़ा-क्रोड़ी सागरोपम तक यह आरा चलता है वर्णादि शुभ पुद्गलों की अनन्त गुणा हानि होती है। देहमान घटते-घटते 500 धनुष का, आयुष्य क्रोड़ पूर्व का रह जाता है। उतरते आरे सात हाथ का देहमान, दो सौ वर्ष में कुछ कम का आयु रह जाता है। मनुष्यों के शरीर में 32 पसलियाँ, उतरते आरे 16 पसलियाँ रह जाती हैं। इस आरे में संहनन 6, संस्थान 6, पाँचों गतियों में जाने वाले मनुष्य होते हैं। 23 तीर्थकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव इसी आरे में होते हैं। औदारिक शरीर के पुद्गलों का किसी निश्चित दृढ़ता के साथ एकत्र रहने को संहनन कहते हैं। शरीर की आकृति को संस्थान कहते हैं।

वासुदेव- वासुदेव पूर्व भव में तप संयम का पालन करते हुए निदान करते हैं और आयु पूर्ण होने पर स्वर्ग या नरक का एक भव करके उत्तम कुल में अवतरित होते हैं। उनकी माता को सात उत्तम स्वप्न आते हैं। युवावस्था को प्राप्त कर राज्य सिंहासन पर बैठते हैं। वासुदेव पद की प्राप्ति के समय सात रत्न उत्पन्न होते हैं। (1) सुदर्शन चक्र, (2) अमोघ खड्ग, (3) कौमुदी गदा, (4) पुष्पमाला, (5) अमोघ धनुष बाण शक्ति, (6) कौस्तुभ मणि, (7) महारथ। बीस लाख अष्टापदों का बल इनके शरीर में होता है। अमोघ प्रतिवासुदेव को मारकर उनके राज्य के अधिकारी बनते हैं। वासुदेव का तीन खण्ड पर एक छत्र राज्य होता है। बलदेव वासुदेव के बड़े भाई होते हैं। बलदेव की माता 4 उत्तम स्वप्न देखती है। बलदेव-वासुदेव के पिता एक ही होते हैं किन्तु माताएं अलग-अलग होती हैं। दोनों भाइयों में अत्यन्त प्रेम होने से साथ-साथ रहते हैं। दस लाख अष्टापदों का बल इनके शरीर में होता है। वासुदेव की मृत्यु के बाद बलदेव संयम धारण करते हैं और आयु का अंत होने पर स्वर्ग या मोक्ष में जाते हैं।

चौथे आरे के 75 वर्ष साढ़े आठ महिने शेष रहने पर अंतिम तीर्थकर प्रभु महावीर प्राणत देवलोक से च्यवकर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में क्षत्रिय कुंड नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण के यहां देवानंदा की कुक्षी में उत्पन्न हुए। 83वीं रात्रि को शकेन्द्र की आज्ञा से हरिणगमैषी देव सिद्धार्थ राजा के यहां त्रिशला

रानी की कुक्षि में महावीर के जीव का प्रक्षेप करता है। चैत्र शुक्ल तेरस को भगवान का जन्म होता है। यौवनावस्था आने पर यशोदा के साथ पाणिग्रहण, प्रियदर्शना पुत्री का जन्म और 30 वर्ष की आयु में प्रव्रज्जा अंगीकार की। 12 वर्ष 6 माह 15 दिन तक कठिन तप ध्यान करके वैशाख शुक्ल दशमी को सुव्रत नामक दिन, विजय मुहूर्त में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, शुभ चन्द्रमा के मुहूर्त में, वियंता नामक पिछले प्रहर में, जृंभिका नगर के बाहर जुबालिका नदी के उत्तर दिशा तट पर शालिवृक्ष के समीप गौदूह आसन में केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया। केवली पर्याय में 29 वर्ष, साढ़े पाँच मास विचरते रहे। चौथे आरे के 3 वर्ष, साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर भगवान कार्तिक अमावस्या को स्वाति नक्षत्र में निर्वाण पधारे। भगवान के पाँच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुए। भगवान महावीर के निर्वाण के बाद 64 वर्ष तक केवलज्ञान रहा। गौतम स्वामी 12 वर्ष, सुधर्मास्वामी 8 वर्ष, जम्बुस्वामी 44 वर्ष केवली पर्याय में रहे।

जम्बुस्वामी के निर्वाण के बाद 10 बोलों का विच्छेद हो गया- (1) केवल ज्ञान, (2) मनः पर्याय ज्ञान, (3) परमावधि ज्ञान, (4) परिहार विशुद्धि चारित्र, (5) सूक्ष्म संपराय चारित्र, (6) यथाख्यात चारित्र, (7) पुलाक लब्धि, (8) आहारक शरीर, (9) क्षपक-उपशम श्रेणी (मतान्तर से क्षायिक सम्यक्त्व), (10) जिन कल्पी।

पाँचवाँ आरा - दुःखम

इक्कीस हजार वर्ष का यह दुःखम नामक पाँचवाँ आरा प्रारंभ होता है। इस आरे में दुःख की विपुलता होती है। चौथे आरे की अपेक्षा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के पुद्गलों में अनन्तगुणी हीनता आ जाती है। आयु घटते-घटते सौ वर्ष झाड़ोरा, देहमान सात हाथ, 16 पसलियाँ और उतरते 20 वर्ष की आयु, दो हाथ का शरीर, आठ पसलियाँ रह जाती हैं। इस आरे में 6 संहनन, 6 संस्थान होते हैं। इस आरे में मोक्ष नहीं होता। चौथे आरे में जन्म मनुष्य पाँचवें आरे में मोक्ष जा सकते हैं।

पाँचवें आरे के लक्षण के 32 बोल

(1) नगर गांव सरीखे, (2) ग्राम श्मशान जैसे (3) सुकुलोत्पन्न दास-दासी बनते हैं, (4) यम जैसे क्रूर दण्ड देने वाले राजा होते हैं, (5) प्रधान लालची होते हैं, (6) कुलीन स्त्रियाँ दुराचारी हो जाती हैं, (7) कुलीन जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-9

स्त्री वैश्या के समान कर्म करने वाली होती हैं, (8) पुत्र पिता की आज्ञा नहीं मानने वाला होता है, (9) शिष्य गुरु की निंदा करने वाले होते हैं। (10) दुर्जन लोग सुख में रहेंगे (11) सज्जन लोग दुःखी रहेंगे। (12) दुर्भिक्ष अधिक पड़ेगा। (13) सर्प, बिच्छु, दंश, मच्छर आदि क्षुद्र जीवों की उत्पत्ति अधिक मात्रा में होगी। (14) ब्राह्मण लोभी होंगे। (15) हिंसा को धर्म बताने वाले अधिक होंगे। (16) एक मत के अनेक मतान्तर होंगे। (17) मिथ्यात्व की वृद्धि होगी (18) पाखण्डियों की पूजा होगी (19) देव-दर्शन दुर्लभ होंगे। (20) वैतादय पर्वत के विद्याधरों की विद्या का प्रभाव मंद पड़ेगा। (21) दुग्ध आदि सरस वस्तुओं की स्निग्धता कम होगी। (22) पशु अल्पायु होंगे। (23) चातुर्मास योग्य क्षेत्र कम रह जाएंगे। (24) साधु की 12, श्रावक की 11 प्रतिमा पालन करने वाला कोई नहीं रहेगा। (25) गुरु शिष्य को नहीं पढ़ायेंगे। (26) शिष्य अविनीत होंगे। (27) आचार्य अलग-अलग संप्रदाय स्थापित कर आत्म स्थायी (अपनी जमाने वाले) और दूसरों की उखाड़ने वाले होंगे। (28) उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले, लोगों को भ्रम में डाल कर फंसाने वाले नाममात्र के धर्मात्मा ज्यादा होंगे। (29) धर्मात्मा, सुशील, सरल स्वभावी लोगों की कमी होगी। (30) मलेच्छ राजा अधिक होंगे। (31) लोगों की धर्म पर प्रीति कम होगी।

इस उतरते आरे में सोना, चाँदी आदि धन का विच्छेद हो जायेगा। लोहे की धातु रहेगी। चमड़े की मोहरें चलेंगी। जिनके पास ये रहेगी वे श्रीमंत माने जाएंगे। इस समय में उपवास मासखमण के समान लगेगा। इस आरे में अधिकांश ज्ञान का उच्छेद हो जायेगा। केवल दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन रहेंगे। किन्हीं का मन्तव्य है कि 1. दशवैकालिक, 2. उत्तराध्ययन 3. आचारांग और 4. आवश्यक- ये चार सूत्र रहेंगे।

इनमें चार जीव एकाभवत्तारी होंगे- (1) दुपसह नामक आचार्य, (2) फाल्गुनी नामक साध्वी, (3) जिनदास श्रावक, (4) नागश्री श्राविका।

पंचम आरे के अंतिम दिन अर्थात् आषाढ शुक्ल पूर्णिमा को शक्रेन्द्र का आसन चलायमान होगा तब देवेन्द्र शक्रेन्द्र आकाशवाणी करेंगे। हे भरत क्षेत्रवासियों! पाँचवां आरा आज समाप्त हो रहा है। कल छठा आरा लगेगा। सावधान हो जाओ। जो धर्म आराधना करनी हो कर लो। यह सुनकर पूर्वोक्त चारों जीव सर्व जीवों से क्षमायाचना कर निःशल्य होकर संथारा ग्रहण करेंगे।

चारों जीव सौधर्म देवलोक में पैदा होंगे। उसके अनन्तर संवर्तक-महासंवर्तक वायु चलेगी। जिससे पर्वत, गढ़, कोट, कुएँ, बावड़ी, महल आदि नष्ट हो जाएंगे। केवल वैतादय पर्वत, गंगा, सिन्धु नदी, ऋषभकूट और लवण समुद्र की खाड़ी ये पांच स्थान बचे रहेंगे। शेष सब नष्ट हो जाएंगे। पंचम आरे के अन्तिम दिन के तीसरे भाग में जैन धर्म, अन्य धर्म, राजनीति, बादर अग्नि तथा चरित्र धर्म विच्छिन्न हो जाएगा।

छठा आरा : दुःखमा-दुःखम

पाँचवें आरे की समाप्ति के अनन्तर इक्कीस हजार वर्ष का दुःखम-दुःखम नामक छठा आरा आरंभ होता है। इसमें घोरतिघोर दुःख होता है। कठोर, धूलिमलिन, दुस्सह, भयंकर संवर्तक, तीव्र गति से चलने वाली वायु चलेगी। दिशाएं प्रतिक्षण धूमिल रहेंगी। कुछ भी दिखाई नहीं देगा। काल की रूक्षता के कारण चन्द्रमा अहितकर, अपथ्यकर, शीत हिम छोड़ेगें। सूरज अत्यंत असह्य रूप में तपेंगे। भरत क्षेत्र का अधिष्ठाता देव पंचम आरे के विनष्ट होते हुए मनुष्यों में से बीज रूप कुछ मनुष्यों को उठा ले जाता है। वैतादय पर्वत के दक्षिण और उत्तर भाग में गंगा सिंधु नदी है उनके आठों किनारे पर नौ-नौ बिल हैं। सब मिलकर $8 \times 9 = 72$ बिल हैं। प्रत्येक बिल में तीन मंजिलें हैं। उक्त देव उन मनुष्यों को इन बिलों में रख देता है। छठे आरे में पाँचवें आरे की अपेक्षा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के पुद्गलों की पर्याय में अनन्तगुणी हानि हो जाती है। क्रमशः घटते-घटते आयुष्य 20 वर्ष का और अवगाहना एक हाथ ही रह जाती है। इस आरे में अशुभ संहनन और अशुभ संस्थान रहता है। मनुष्य के शरीर में आठ पसलियाँ उतरते आरे में चार पसलियाँ रह जाती है। अपरिमित आहार की इच्छा होती है। रात्रि में शीत और दिन में ताप अत्यन्त प्रबल होता है। इस कारण वे मनुष्य बिलों से बाहर नहीं निकल सकते, सिर्फ सूर्योदय और सूर्यास्त के समय एक मुहूर्त के लिए बाहर निकलते हैं। उस समय गंगा और सिंधु नदी का पानी सर्प के समान वक्र गति से बहता है। गाड़ी के दोनों चक्र के मध्यभाग जितना चौड़ा और आधा चक्र डुबे जितना गहरा प्रवाह रह जाता है। उस पानी में कच्छ-मच्छ बहुत होते हैं। वे मनुष्य उन्हें पकड़-पकड़ कर नदी की रेत में गाड़कर अपने बिलों में भाग जाते हैं। शीत-ताप के योग से जब पक जाते हैं तो दूसरी बार

आकर उन्हें निकाल लेते हैं। लूटकर खा जाते हैं। पशु इनकी हड्डियों को चूस-चूस कर निर्वाह करेंगे। मृतक मनुष्यों की खोपड़ी में लोग जल पीयेंगे। उस काल के मनुष्य दीन-हीन, दुर्बल, दुर्गन्धित, रूग्ण, अपवित्र, नग्न, आचार-विचार से हीन और माता, भगिनी, पुत्री के साथ संगम करने वाले होते हैं। छः वर्ष की स्त्री संतान का प्रसव करती है। कुतरी और शूकरी के समान वे बहुत परिवार वाले और महाक्लेशमय होते हैं। धर्म पुण्य से हीन दुःख ही दुःख में अपनी सम्पूर्ण आयु पूर्ण कर नरक या तिर्यच गति में चले जाते हैं। जो मनुष्य दानपुण्य से रहित, णमोकार मंत्र के स्मरण से रहित तथा प्रत्याख्यान रहित होंगे वे ही इस आरे में उत्पन्न होंगे।

उत्सर्पिणी काल

उपर्युक्त अवसर्पिणी काल के छह आरे बीत जाने के बाद उत्सर्पिणी काल का आरम्भ होता है। इसमें भी छह आरे होते हैं। अन्तर यह है कि वे विपरीत क्रम से होते हैं। अर्थात् उत्सर्पिणी काल दुःषम-दुःषम से प्रारम्भ होकर सुषम-सुषम पर समाप्त होता है। उत्सर्पिणी काल के छः आरों का वर्णन है-

1. **दुःखमा-दुःखम-** उत्सर्पिणी काल का यह दुःखमा-दुःखम नामक पहला आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन से इसका आरम्भ होता है। इसमें सब रचनाएँ और स्थिति अवसर्पिणी काल के छठे आरे के समान जाननी चाहिये। विशेषता यह है कि इस काल में आयु और अवगाहना आदि क्रमशः बढ़ती जाती है।

2. **दुःखम-** उत्सर्पिणी काल का द्वितीय आरा दुःखम है। यह भी इक्कीस हजार वर्ष का है। यह भी श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से आरम्भ होता है। इस आरे के आरम्भ होते ही पाँच प्रकार की वृद्धि सम्पूर्ण भरत क्षेत्र में होती है।

प्रथम आरे के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि में अनन्तगुणा वृद्धि होकर दुःखम नामक दूसरा आरा लगेगा। उस समय पुष्कर संवर्तक नामक महामेघ भरत क्षेत्र प्रमाण आयाम विष्कम्भ वाला होकर आकाश में प्रकट होगा। यह घनघोर गर्जना करेगा।

गर्जना के पश्चात बिजलियाँ कड़केंगी और मेघ युग, मूसल, मुष्टि प्रमाण धाराओं से सर्वत्र एक रूप में सात दिन अनवरत बरसेगा। इस मेघ के

बरसने से पृथ्वी का अंगार के समान, तप्त चिनगारी के समान, तप्त राख के समान, तप्त कवेलू के समान भू-भाग शीतल बन जाएगा। इसके पश्चात भरत क्षेत्र प्रमाण क्षीर मेघ नामक महामेघ प्रकट होगा, गर्जना करेगा, बिजलियाँ कड़केंगी और वह मेघ युग-मूसल मुष्टि प्रमाण धाराओं से सात रात-दिन पर्यन्त अनवरत सर्वत्र एकरूप में बरसेगा, जिसके फलस्वरूप भरत क्षेत्र की भूमि में शुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पैदा होगा। इसके पश्चात घृतमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। गर्जना करेगा, बिजलियाँ कड़केंगी और सात दिन-रात तक युग-मूसल-मुष्टि प्रमाण धाराओं में सर्वत्र एक रूप में सात रात-दिन तक बरसेगा। इस प्रकार वह भरत क्षेत्र की भूमि में स्निग्धता उत्पन्न करेगा। फिर सात दिन पर्यन्त अमृत मेघ प्रादुर्भूत होगा। जिसके कारण भरत क्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, तृण, पर्वत, हरित, औषधि, प्रवाल आदि वनस्पतियाँ उत्पन्न होगी। अमृत मेघ के बाद रसमेघ प्रकट होगा।

पाँच प्रकार के तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधु रस को उत्पन्न करेगा। जिससे भरतक्षेत्र विविध प्रकार की वनस्पतियों से सुशोभित और सुखोपभोग्य बन जायेगा। तब तत्कालीन बिलवासी मनुष्य बिलों से निकलकर इस मनोरम दृश्य को देखेंगे तथा उन भव्य वनस्पतियों का उपभोग करेंगे, इससे वे हृष्ट-पुष्ट होंगे। शनैः शनैः फलाहार की प्रधानता से उनकी बुद्धि में सात्विकता की अभिवृद्धि होगी, जिससे वे मांसाहार और फलाहार का तुलनात्मक विचार करने में सक्षम होंगे। फलाहार से आयु बल-बुद्धि आदि की वृद्धि का अनुभव करते हुए उसे मुख्यता देंगे एवं मांसाहार को घृणित क्रूरता का परिणाम समझने लगेंगे। फलतः विकासोन्मुख बुद्धि वाले वे पारिवारिक सामाजिक रचना के रूप में कुछ मर्यादापूर्वक इस प्रकार एक-दूसरे को कहेंगे कि 'हे देवानुप्रियों! भरत क्षेत्र विविध वनस्पतियों से सुशोभित और सुखोपभोग्य हो गया है, अतएव आज से हममें से कोई भी मांसाहार नहीं करेगा। जो कोई मांसाहार करेगा उसकी छाया से भी हम दूर रहेंगे। इस प्रकार वे लोग मर्यादा स्थापित करेंगे। मर्यादा के अनुसार आचरण करते हुए वे भरत क्षेत्र में सुखपूर्वक विचरेंगे।

'इस आरे में भरत क्षेत्र का भूमि भाग बहु रसमय एवं रमणीय हो जायेगा। इस काल में छह संस्थान, छह संहनन, कई हाथ की अवगाहना, जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट सौ वर्ष से अधिक आयु भोग कर कोई जीव

नरकगामी यावत् कोई जीव स्वर्गगामी होंगे। किन्तु सिद्धि प्राप्त नहीं करेंगे।' इस रीति से वर्णादि की शुभ पर्यायों में अनन्त गुणी वृद्धि होती है। अवसर्पिणी काल के पाँचवें आरे के समान सब रचना और व्यवस्था स्थापित हो जाती है।

3. **दुःखम-सुखम**- उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे का नाम दुःखम-सुखम है। यह बयालीस हजार वर्ष कम एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का है। इसकी सब रचना अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के समान है। इसके तीन वर्ष और साढ़े आठ माह व्यतीत होने के बाद प्रथम तीर्थकर का जन्म होता है। पहले कहे अनुसार इस आरे में 23 तीर्थकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव आदि होते हैं। पुद्गलों के वर्णादि शुभ पर्यायों में अनन्तगुणी वृद्धि होती है। शेष रचना अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के समान होगी।

4. **सुखम-दुःखम**- उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे की समाप्ति पर दो क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का चौथा आरा सुखम-दुःखम नामक प्रारम्भ होता है। इसके 84 लाख पूर्व, 3 वर्ष और साढ़े आठ माह में चौबीसवें तीर्थकर मोक्ष चले जाते हैं। बारहवें चक्रवर्ती की आयु पूर्ण हो जाती है। करोड़ पूर्व का समय व्यतीत होने पर कल्पवृक्षों की उत्पत्ति होने लगती है। उनसे मनुष्यों और तिर्यचों की इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। असि, मसि, कृषि आदि धंधे बंद हो जाते हैं। युगल उत्पन्न होने लगते हैं। बादर अग्निकाय का विच्छेद हो जाता है। इस प्रकार इस आरे में सब मनुष्य अकर्मभूमिज बन जाते हैं। वर्णादि की शुभ पर्यायों में अनन्तगुणी वृद्धि होती है। शेष रचना अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के समान होगी।

5. **सुखम**- उक्त चौथे आरे के बाद तीन क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का पाँचवाँ आरा लगता है। इसका नाम सुखम है, इसका वर्णन अवसर्पिणी काल के दूसरे आरे के समान समझना चाहिए। वर्णादि की शुभ पर्यायों में क्रमशः अनन्तगुणी वृद्धि होती जाती है।

6. **सुखम-सुखम**- सुखम आरे के बाद चार क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का छठा आरा लगता है। इसका नाम सुखम-सुखम है। इसका वर्णन अवसर्पिणी काल के प्रथम आरे के समान समझना चाहिये। वर्णादि की शुभ पर्यायों में क्रमशः अनन्तगुणी वृद्धि होती है। इस प्रकार दस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का अवसर्पिणी काल और दस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का उत्सर्पिणी काल होता

है। दोनों मिलकर बीस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का एक काल-चक्र होता है। भरत और ऐरवत क्षेत्र में यह कालचक्र अनादि काल से घूम रहा है और अनन्तकाल तक घूमता रहेगा।

पल्योपमादि का स्वरूप

पूर्वोक्त स्थिति और आरक प्रकरण में पल्योपम और सागरोपम का कथन आया है। अतएव उनके स्वरूप को समझना जरूरी है। शास्त्रकार ने पल्योपम सागरोपम को उपमा द्वारा समझाया है, अतएव वे उपमेय कहे जाते हैं।

पल्योपम : पुद्गल का सबसे छोटा निरंश अंश परमाणु कहा जाता है। वह अतीन्द्रिय होता है।

1. इस प्रकार के अनन्त सूक्ष्म परमाणु से एक व्यवहार परमाणु बनता है।
2. अनन्त व्यवहार परमाणुओं से एक उष्ण स्निग्ध परमाणु होता है।
3. अनन्त उष्ण-स्निग्ध परमाणुओं से एक शीत स्निग्ध परमाणु होता है।
4. आठ शीत स्निग्ध परमाणुओं से एक ऊर्ध्व रेणु होता है।
5. आठ ऊर्ध्व रेणु से एक त्रस रेणु होता है।
6. आठ त्रस रेणु से एक रथ रेणु होता है।
7. आठ रथ रेणु से देवकुरु उत्तरकुरु के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है।
8. आठ देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों के बालाग्रों से हरिवर्ष, रम्यकवर्ष के मनुष्यों का एक बालाग्र।
9. इनके आठ बालाग्र से हेमवत, हेरण्यवत मनुष्यों का एक बालाग्र।
10. इनके आठ बालाग्र से पूर्व-विदेह पश्चिम-विदेह मनुष्यों का एक बालाग्र।
11. इनके आठ बालाग्र से भरत ऐरवत के मनुष्य का एक बालाग्र।
12. इनके आठ बालाग्र से एक लीख होती है।
13. आठ लीख की एक यूका (जू)।
14. आठ यूका का एक अर्धयव।
15. आठ अर्धयव का एक उत्सेध अंगुल।
16. छह उत्सेध अंगुल का एक पैर का पना (चौड़ाई)।

अवसर्पिणी काल के छः आरे का चार्ट

		पहला आरा	दूसरा आरा	तीसरा आरा	चौथा आरा	पाँचवा आरा	छठा आरा
1.	नाम	सुषम-सुषम	सुषम	सुषम-दुषम	दुषम-सुषम	दुषम	दुषम-दुषम
2.	अनुभव	सुख-सुख	सुख	सुख-दुख	दुख-सुख	दुःख	दुःख-दुःख
3.	काल	भोगकाल (युगलकाल)	भोगकाल	भोगकाल-कर्मकाल व धर्मकाल	कर्मकाल एवं धर्मकाल	कर्मकाल, धर्मकाल व पापकाल	महापाप काल
4.	स्थिति	4 क्रीड़ा क्रीड़ी सागरोपम	3 क्रीड़ा क्रीड़ी सागरोपम	2 क्रीड़ा क्रीड़ी सागरोपम	42 हजार वर्ष कम 1 क्रीड़ा क्रीड़ी सागरोपम	21 हजार वर्ष	21 हजार वर्ष
5.	पृथ्वी का स्वाद	मिश्री के समान	शक्कर के समान	गुड़ के समान	कूमशःहीन	कूमशःहीन	भस्म रूप
6.	मनुष्य की अवगाहना(ऊँचाई)	लगते 3 गाऊ उतरते 2 गाऊ	लगते 2 गाऊ उतरते 1 गाऊ	लगते 1 गाऊ उतरते 500 धनुष	लगते 500 धनुष उतरते 7 हाथ	लगते 7 हाथ उतरते 2 हाथ	लगते 2 हाथ उतरते 1 हाथ
7.	मनुष्य की आयुष्य	लगते 3 पल्योपम उतरते 2 पल्योपम	लगते 2 पल्योपम उतरते 1 पल्योपम	लगते 1 पल्योपम उतरते क्रीड़ पूर्व	लगते क्रीड़ पूर्व उतरते 100 वर्ष से कुछ अधिक	लगते 100 वर्ष झाझेरी उतरते 20 वर्ष	लगते 20 वर्ष उतरते 16 वर्ष
8.	मनुष्य का संहनन	वजू ऋषभनाराच संहनन	वजू ऋषभनाराच संहनन	वजू ऋषभनाराच 1-6 संहनन	6 संहनन	6 संहनन	सेवार्त संहनन

अवसर्पिणी काल के छः आरे का चार्ट

9.	मनुष्य का संस्थान	समचतुरस्र संस्थान	समचतुरस्र संस्थान	समचतुरस्र 1-6 संस्थान	6 संस्थान	6 संस्थान	हुण्डक संस्थान (कुरूप)
10.	मनुष्य के शरीर की पसलियां	256	128	64	32	16	8 (बेडौल शरीर वाले)
11.	मनुष्य का निवास	वनवास (वृक्षों पर)	वनवास	वनवास-नगरवास	नगरवास	नगरवास	बिलवास
12.	दण्डनीति	नहीं	नहीं	नहीं-हाकार, मक्कार, धिक्कार	कठोर	कठोर	नहीं
13.	आहार की इच्छा	तीन दिन के अंतर में	2 दिन के अंतर में	1 दिन के अंतर में	प्रायः दिन में एक बार	दिन में अनेक बार	अनियमित इच्छा
14.	आहार	पृथ्वी, पुष्प, फलों का	पृथ्वी, पुष्प, फलों का	पृथ्वी, पुष्प, फल, अन्न आदि का	अन्न, फल आदि का	अन्न, फल, मांसाहार आदि का	प्रायः मांसाहार
15.	गति	देवगति	देवगति	देवगति-चारों गति व मोक्ष	चारों गति व मोक्ष	चारों गति व मोक्ष	प्रायः नरक-तिर्यंच गति
16.	संतति का पालन	49 दिन	64 दिन	79 दिन	अनियमित काल	अनियमित काल	अनियमित काल

आशातना

आशातना शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है -

आ - सामस्त्येन शात्यन्ते अपध्वंस्यन्ते ज्ञानादिगुणाः याभि ताः
आशातनाः।

अर्थ- जिनका सेवन करने से ज्ञानादि गुण नष्ट हो जायें उन्हें आशातना कहते हैं अर्थात् सम्यग्दर्शनादि गुणों का घात करने वाली अविनय की क्रियाओं को आशातना कहते हैं।

“एवं धम्मस्स विणओ मूलं” कह कर शास्त्रकारों ने विनय का महत्व बतलाते हुए उसकी अनिवार्य आवश्यकता भी बतला दी है। धर्म का प्रासाद (महल) विनय की नींव पर खड़ा होता है इसीलिए विनय रहित क्रियाओं को आशातना (सम्यग्दर्शनादि गुणों का नाश करने वाली) कहना ठीक ही है। वे आशातनाएँ तैंतीस प्रकार की हैं। शैक्ष (नव दीक्षित) और छोटी दीक्षा वाले साधु-साध्वी को रत्नाधिक (दीक्षा में बड़े साधु साध्वियों) के साथ रहते हुए रत्नाधिक के प्रति विनय और बहुमान रख कर इन आशातनाओं का परिहार करना चाहिए जिससे विनय और धर्म की यथार्थ आराधना होती है और मनुष्य देवों के उत्तम ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न होता है और मुमुक्षु अपने मुक्ति प्राप्ति रूप ध्येय के अधिकाधिक समीप पहुँचता है। इसका फल बतलाते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के 31 वें अध्ययन में बतलाया है -

से ण अच्छइ मंडले

अर्थात्- वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता है अपितु शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

‘आवश्यक’ सूत्र में दूसरे प्रकार से भी तैंतीस आशातनाएँ बतलाई हैं यथा-

‘अरिहंताणं आसायणाए, सिद्धाणं आसायणाए जाव सज्झाइए ण सज्झाइयं’ इन आशातनाओं का स्वरूप हारिभद्रीय आवश्यक सूत्र अथवा श्रमण सूत्र से जानना चाहिए।

“सम्यग् दर्शन आदि की घात करने वाली ये निम्न तैंतीस आशातनाएँ कही गई हैं”-

(1) शैक्ष (शिष्य तथा दीक्षा पर्याय में छोटा) रत्नाधिक (यानि ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नों में बड़े एवं दीक्षा पर्याय में बड़े साधु) के अविनय पूर्वक आगे-आगे चले तो शिष्य को आशातना लगती है। (2) शिष्य रत्नाधिक के बराबर चले तो शिष्य को आशातना लगती है। (3) शिष्य रत्नाधिक के बहुत पास चले तो। (4) शिष्य रत्नाधिक के आगे खड़ा रहे। (5) बराबरी में खड़ा रहे। (6) बहुत नजदीक चिपकता हुआ खड़ा रहे तो शिष्य को आशातना लगती है। (7) शिष्य रत्नाधिक के आगे बैठे। (8) बराबर बैठे। (9) बहुत नजदीक चिपकता हुआ बैठे तो शिष्य को आशातना लगती है। (10) शिष्य रत्नाधिक के साथ बाहर विचार भूमि यानि जंगल गया हो और कारणवशात् दोनों एक ही पात्र में जल ले गए हों, ऐसी अवस्था में यदि शिष्य रत्नाधिक से पहले आचमन यानि शौच करे। रत्नाधिक पीछे शौच करे तो (11) शिष्य रत्नाधिक के साथ बाहर विहार भूमि यानि जंगल गया हो वहाँ से वापिस लौट कर यदि शिष्य पहले ईर्यापथ सम्बन्धी आलोचना करे तो (12) कोई पुरुष ऐसा है जिसके साथ रत्नाधिक को पहले बातचीत करनी चाहिए। उसके साथ यदि शिष्य पहले बातचीत करे और रत्नाधिक पीछे बातचीत करे तो (13) रात्रि के समय अथवा विकाल यानि सन्ध्या के समय रत्नाधिक शिष्य को बुलाए कि हे आर्यो! कौन सोता है और कौन जागता है? ऐसा पूछने पर शिष्य जागते हुए भी रत्नाधिक के वचनों को न सुने यानि कुछ भी उत्तर न दे तो। (14) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर उसकी आलोचना यदि पहले अन्य शिष्यों के पास करे और पीछे रत्नाधिक के पास करे तो (15) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर उस आहार पानी को यदि पहले छोटे साधुओं को दिखलावे और रत्नाधिक को पीछे दिखलावे तो। (16) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर पहले शिष्य को एवं छोटे साधु को निमन्त्रित करे और रत्नाधिक को पीछे निमन्त्रित करे तो (17) शिष्य रत्नाधिक के साथ अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर रत्नाधिक को बिना पूछे ही जिसको चाहता है उसको वह आहार प्रचुर मात्रा में दे देता है तो। (18) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर रत्नाधिक के साथ आहार करते हुए यदि प्रचुर मात्रा में खट्टे रस वाले शाक आदि को, रसादि गुणों से प्रधान सरस, मनोज्ञ,

मनोहर-मन को प्रिय लगने वाला, घृतादि से स्निग्ध, रूक्ष-स्वादिष्ट लगने वाला पापड़ आदि को जल्दी-जल्दी खाने लगे तो (19) यदि रत्नाधिक शिष्य को बुलावे-आवाज दे, किन्तु शिष्य उनके वचनों को ध्यान पूर्वक न सुने तो। (20) रत्नाधिक के बुलाने पर शिष्य यदि अपने स्थान पर बैठा हुआ ही उनके वाक्य को सुने किन्तु कार्य करने के भय से उनके पास न जावे तो (21) रत्नाधिक के बुलाने पर यदि शिष्य “क्या कहते हो” ऐसा कहे तो। (22) शिष्य रत्नाधिक को यदि ‘तू’ कहता है तो (23) शिष्य रत्नाधिक को अत्यन्त कठोर और आवश्यकता से अधिक वाक्यों का प्रयोग करके पुकारे तो (24) शिष्य रत्नाधिक के वचनों से ही रत्नाकर का तिरस्कार करे तो, जैसे कि रत्नाधिक कहे कि ‘हे आर्य! तुम ग्लान साधुओं की सेवा क्यों नहीं करते? तुम आलसी हो।’ रत्नाधिक के ऐसा कहने पर यदि शिष्य उन्हीं के शब्दों को दोहराते हुए उन्हें कहे कि- तुम स्वयं ग्लान साधुओं की सेवा क्यों नहीं करते? तुम खुद आलसी हो तो (25) रत्नाधिक जब कथा कह रहे हों तब शिष्य यदि बीच में ही बोल उठे कि ‘अमुक बात इस तरह है, अथवा अमुक पदार्थ का स्वरूप इस प्रकार है’ तो। (26) रत्नाधिक धर्मकथा कह रहे हों, उस समय शिष्य यदि कहे कि आपको याद नहीं है, आप भूल रहे हैं, यह बात इस तरह नहीं है तो। (27) रत्नाधिक धर्मकथा कह रहे हों उस समय यदि शिष्य प्रसन्नचित्त न हो एवं उनके वचन एकाग्रचित्त से न सुने तो। (28) रत्नाधिक धर्मकथा कह रहे हों उस समय शिष्य कहे ‘अब गोचरी का समय हो गया है, कथा समाप्त होनी चाहिए’ इत्यादि कहकर सभा को छिन्न-भिन्न करे तो। (29) रत्नाधिक धर्मकथा कह रहे हों, उस समय यदि शिष्य किसी उपाय से कथा विच्छेद करे तो। (30) जिस सभा में रत्नाधिक धर्मकथा कह रहे हों, वह सभा उठी न हो, सभा छिन्न-भिन्न न हुई हो यानि लोग गये न हों, सभा छिन्न न हुई हों यानि लोग बिखरे न हों, सभा बिखरी न हों, उसी सभा में यदि शिष्य रत्नाधिक की लघुता और अपना गौरव बताने के लिए उसी कथा को दो बार-तीन बार विस्तार पूर्वक कहे तो। (31) शिष्य के पैर से यदि रत्नाधिक की शय्या संस्तारक बिछौने का स्पर्श हो जाये और शिष्य हाथ जोड़कर उस अपराध की क्षमा मांगे बिना तथा उस आसन को वापिस ठीक किए बिना चला जाए तो। (32) शिष्य रत्नाधिक के शय्या संस्तारक पर खड़ा रहे, बैठे अथवा सोवे

तो। (33) शिष्य यदि रत्नाधिक से ऊँचे आसन पर अथवा बराबर आसन पर खड़ा रहे, बैठे अथवा सोये तो।

-ये तैंतीस आशातनाएँ हैं। शिष्य को इन आशातनाओं का त्याग करना चाहिए अर्थात् इन आशातनाओं से बचना चाहिए।



साधु संतों से बात करते समय ध्यान रखने योग्य बातें

ऐसा नहीं	ऐसा बोलिए
1. गुड मॉर्निंग म.सा.	1. मत्थाएण वंदामि म.सा.
2. म.सा. आपकी तबियत ठीक है।	2. आपके ज्ञान दर्शन चारित्र एवं संयमी स्वास्थ्य की सुख शान्ति।
3. हमारी गलती हुई हो तो माफ करना।	3. हे क्षमा श्रमण! दिवस सम्बन्धी अपराधों के लिए क्षमा याचना करते हैं।
4. आपकी विहार यात्रा ठीक रहे	4. आपश्री जी की विहार यात्रा (संयम यात्रा) निर्बाध रहे।
5. म.सा. अभी-अभी गोचरी के लिए निकले हैं।	5. म.सा. अभी-अभी गोचरी के लिए पधारे हैं।
6. म.सा. हमारे घर गोचरी चलो ना।	6. (ऐसा निमंत्रण स्थानक में नहीं देना) स्थानक के बाहर कह सकते हैं कि म.सा. हमारे घर गोचरी पानी के लाभ की कृपा करावें। म.सा. हमें भी आहार पानी का लाभ दें।
7. आपके लिए चावल, दाल धोकर पानी रखा है।	7. चावल, दाल, बर्तन आदि धोया पानी इकट्ठा करके रखा हुआ है, कृपा करें।
8. म.सा. रोटी आदि और लो ना, हम तो फिर बना लेंगे।	8. म.सा. आपकी खपत हो तो कृपा करें। हमें आज ऊनोदरी तप करने का मौका मिलेगा। अभी अपने लिए नया आहारादि नहीं बनायेंगे।
9. म.सा. यह सब्जी बहुत टेस्टी है।	9. म.सा. यह आपके स्वास्थ्य के लिए अनुकूल रहेगी।
10. म.सा. पधारेंगे तभी पारणा करूंगी।	10. (भावना भाना) वह क्षण धन्य होगा, जब आहारादि बहाराकर पारणा करूं।
11. म.सा. हमारे यहाँ गोचरी में रोज पधारना।	11. म.सा. आपकी अनुकूलता अनुसार कृपा दृष्टि बनाये रखना।
12. म.सा. पानी पी रहे हैं।	12. म.सा. धोवन आरोग (पी) रहे हैं।

णमो सिद्धाणं
श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम परीक्षा 2011

(प्रश्न-उत्तर पत्र भाग-9) पूर्णांक : 100

सूत्र विभाग-35

- प्रश्न 1. निम्न के शब्दार्थ लिखो। 10
- 1) असंख्यं -
 - 2) सकम्मुणा -
 - 3) वेयकाले -
 - 4) अणंतमोहे -
 - 5) दद्दुं -
 - 6) आसुपण्णे -
 - 7) अप्पमत्ते -
 - 8) परिसंकमाणो -
 - 9) णेयाउयं -
 - 10) मलावधंसी -
- प्रश्न 2. निम्न गाथाओं को पूर्ण कर भावार्थ लिखें। 20
- 1) वित्तेणमदद्दुंमेव॥
भावार्थ
 - 2) स पुव्वमेवं.....भेए॥
भावार्थ
- प्रश्न 3. निम्न गाथाओं को पूर्ण करो। 10
- 1) असंख्यंगहिंति॥
 - 2) जे पावकम्मेहिंउवेति॥
 - 3) तेणे जहामोक्ख अत्थि॥
 - 4) संसारमावण्णउवेति॥
 - 5) सुत्तेसुचरेऽप्पमते॥
 - 6) जे संखयासरीरभेए॥

तत्त्व विभाग-25

प्रश्न 1. निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए। 10

1) परितापनिकी क्रिया की परिभाषा लिखें।

उत्तर

2) आरम्भिकी क्रिया की परिभाषा लिखें।

उत्तर

3) प्रात्ययिकी क्रिया की परिभाषा लिखें।

उत्तर

4) रौद्र ध्यान के 4 लक्षण (दोष) के नाम लिखें।

उत्तर

5) शुक्ल ध्यान के चार भेदों के नाम लिखें।

उत्तर

6) छः संहनन के नाम लिखें।

उत्तर

7) सात समुद्घात के नाम लिखें।

उत्तर

8) पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर

9) वेद किसे कहते हैं?

उत्तर

10) पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान के नाम लिखो।

उत्तर

प्रश्न 2. लघुदण्डक के आधार से गर्भज मनुष्य की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति (दोनों कालों की) समझाइये। 5

उत्तर

प्रश्न 3. नैरयिक जीवों द्वारा वेदे जाने वाले पाप कर्म मोक्ष रूपी फल वाले नहीं होते हैं। क्यों? समझाइये। 5

उत्तर

कथा विभाग-10

- प्रश्न 1. किसने किससे कहा? 10
- 1) “जरा विचार करो, यह ऋण तुम कैसे चुकाओगे?”
उत्तर
- 2) ‘महावीर का नाम मेरे घर में लिया तो खबरदार, भगवान बुद्ध का स्मरण करो।’
उत्तर
- 3) “अपने शीलव्रत का चमत्कार दिखाओ, इस जल को नगर द्वार पर छिड़ककर नगरी का उद्धार कीजिए।”
उत्तर
- 4) “तुम्हें जैसा सुख उपजे वैसा करो, धर्मकार्य में क्षण मात्र भी विलंब मत करो।”
उत्तर
- 5) “हमने तुम्हारे यज्ञ का अनुष्ठान कर तुम्हारे भाग्य को जगा दिया है।”
उत्तर

काव्य विभाग-15

- प्रश्न 1. निम्न काव्यांशों को पूर्ण करो।
- 1) एक एकपार रे प्राणी॥ 2
2) एक वचनरे प्राणी॥ 2
3) मोटा तेटाल रे प्राणी॥ 2
4) जैसी जिनकीशैतान का॥ 3
5) सुना पाँच सौसदानंद शांति॥ 2
6) सुना मेघरथसदानंद शांति॥ 2
7) असुर मेघमालीसदानंद शांति॥ 2

सामान्य ज्ञान विभाग-15

- प्रश्न 1. निम्न प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में लिखिये? 5
- 1) माया करके मंजिल से कौन गिरा?
उत्तर

- 2) रागी को त्यागी किसने बनाया?
उत्तर
- 3) पुण्य से पाप किसने कमाया?
उत्तर
- 4) एक मुहुर्त में कितनी आवलिका होती है?
उत्तर
- 5) एक कालचक्र कितने समय का होता है?
उत्तर

प्रश्न 2. निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखो? (शब्द सीमा 20 शब्द) 10

- 1) अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के मनुष्यों की देहमान, संहनन, संस्थान, पसलियां लिखो?
उत्तर
- 2) इस पाँचवें आरे में कौनसे जीव एकाभवतारी होंगे?
उत्तर
- 3) आशातना शब्द को परिभाषित कीजिए।
उत्तर
- 4) तैंतीस आशातनाओं में प्रारंभ की चार आशातनाएँ लिखो।
उत्तर
- 5) गुडमॉर्निंग म.सा. एवं म.सा. पढ़ाओगे? के स्थान पर कैसे बोलना चाहिये?
उत्तर